Chap-5

अध्याय पाँच

रस / राग और रंग / प्रकृति

रस, राग और रंग

रस :

कविवर 'तरुण' रससिद्ध कवि थे। उनका विशेष रुझान प्रेम पर केन्द्रित था। यह प्रेम श्रृंगार से तो सम्पृक्त था किंतु इनका श्रृंगार नायिकाभेदी स्थूल मांसलता से संलग्न नहीं था। प्रेम में तन की सतही भोगेच्छाएँ न होकर मन की उदात्त अनुराग भावनाएँ समाविष्ट थीं। कवि ने श्रृंगार को केन्द्र में स्थित करके अपनी रसाग्रही प्रेमभावना को तो व्यक्त किया ही है साथ में उसकी संवेदनाओं से जुड़ी परिकल्पनाएँ भी साकार हुई हैं। वह कहता है -

किसने बजाई बंसरी।
बरसात की इस रात में, मेरी व्यथा कर दी हरी।[1]

अपने अन्तर्मन में उदीप्त प्रेम को अपनी आँखों में केन्द्रित करता हुआ कवि विज्ञापित करता है -

इन आँखों के बीच सांवली पुतली हैं,
जिसके बीचोबीच नयन का तारा है।
इस तारे के बीच घनी हरियाली में
मेरी रूप किरण, आवास तुम्हारा है।[2]

श्रृंगार के उद्दीपक विभागों को व्यक्त करता हुआ कवि कहता है -

चांद उग रहा स्तब्ध गगन में,
चिचड़े से घन मंद पवन से,
ऐसी रजनी में न चाहिए, मन की बात छिपानी,
अपनी कहो कहानी[3]

कवि को जब अपने प्रणयी का सामीप्य प्राप्त हो जाता है तब वह मृत्युभय से जैसे मुक्त हो जाता है। उसका अभय मन उद्घोष करता है जैसे -

तुमको पाकर हे मधुर हृदय,
मुझको न मरण का होता भय,
दुख की रातों का अँधियारा, नयनों का अंजन हो जाता,
जीवन होता संगीत महा,
धरतीपर अमृत स्वर्ग बहा,
भवतीर्थ तुम्हारे साथ नहा, यह जीवन पावन हो जाता।
यह जीवन का यमघाट विकट

हँसते गाते ही जाता कट
भव का बंधन निज रूप बदल, अपना भुज बंधन हो जाता।
तुम मेरे साथी होते तो,
जीवन नंदनवन हो जाता[4]

रामेश्वर लाल खण्डेलवाल तरुण एक अपराजेय व्यक्तित्व के धनी ऐसे समर्थ एवं संवेदनशील कवि थे जिन्होंने अपनी प्रांजल परिकल्पनाओं से अपनी रागात्मक उदभावनाओं को कविताओ के सतरंगी इन्द्रधनुषों में ढाला था, यह राग और रंग उनकी प्राकृतिक छटाओं से आच्छादित सुकुमार कविताओं में भी परिलक्षित होता है और श्रृंगार एवं प्रणय की उदात्त परिकल्पना से सम्पृक्त कविताओं में भी। कविवर हरिवंशराय बच्चन ने ठीक ही कहा है - 'उनकी रचनाओं को देख सहसा वर्ड्सवर्थ की ये पंक्ति याद आ जाती है - "The light that was never on sea of land." (यह लो मेरे हस्ताक्षर ग्रंथ में पृष्ठ भाग पर)

इसी तरह कवि रामेश्वर प्रसाद शुक्ल 'अंचल' कहते हैं कि 'स्वच्छन्दता का ऐसा मादक और ताजगी से पूर्ण वातावरण का सृजन आप करते हैं कि हिन्दी के प्रति कवि से दूर आप अलग दिखाई देते हैं।' (यह लो मेरे हस्ताक्षर पृष्ठभाग पर)

कवि तरुण में अनुराग, प्रणय, प्रेम, लगाव, आकर्षण आदि उदार भावनाओं का प्रवाह सदैव अनुभव किया जाता है, उनकी प्रारंभिक तथा अंतिम समय की कविताओं तक उनका प्रेम-उदघोष सर्वत्र व्याप्त रहा है। अपने अंतिम समय की कविता में कवि कहता है -

अभी बहुत अनकहा शेष है, जो शब्दांकित होना है।
प्राणों में कुछ दबा पड़ा है, जो अति सरस सलौना है।
पुतली की लघु नेह-किरण सा कंगन की झिल मिल जैसा
गीली जलती हुई रुई-सा, है कुछ उसे पिरोना है।
चमक गन्ध गति गूँज शब्द की, सही नाप की मिले न जो
तट से टकराती लहरों का सिर धुनधुन कर रोना है।
क्यों सो समझे, क्यों समझाए, ऐसा हो माहौल जहाँ
जो अभिव्यक्त न हो पाए, वह भार मुझे ही ढोना है[5]

आचार्यों ने रस के विभिन्न स्तर स्वीकार किये हैं जैसे -

लौकिक विषय रस
काव्यगत रस
ब्रह्मानन्द
भक्ति रस
महामधुर रस

लौकिक विषय रस :-

इनमें इन्द्रियों के प्रत्यक्ष आनंद की अनुभूति को लौकिक रसान्तर्गत स्वीकार किया गया है। मनुष्य मात्र इसी दैहिक सौख्य के

उपार्जन के प्रति क्रियाशील रहता आया है। ये शारीरिक सुख प्रत्यक्ष में सुखदाई होते हुए भी चिरस्थायी नहीं होते और अन्ततः विघटनकारी या क्षणकारी माने गए हैं। यदि यही दैहिक सौख्यरस वास्तविक रसानुभूति से सम्पृक्त होते या शास्वत होते तो फिर व्यक्ति को अन्य रसों की शोध या वांछा न होती। किंतु मनुष्य में तन के साथ मन भी संलग्न है, भोग के साथ चिन्तन भी है, आनंद के साथ अनुभूति के भी अनेक स्तर हैं, अतः यह ऐन्द्रिय सुख लौकिक और क्षणजीवी ही माना गया है। लौकिक सुख को हमारे पूर्वज आचार्यों ने भ्रम या मृगजल ही माना है, अनुभूत आकर्षण से इतर तात्विक दृष्टि से इसकी सत्यानुभूति कष्टकारक ही कही गई है अतः इस आस्वादित रस में आनंद का स्थायित्व सन्निहित नहीं है।

कवि ने इसे काव्यानुभूति से संलग्न करते हुए कहा है -

यौवन के आगमन की महकवाली
आहट, सरसराहट
वाह !
दीये के बुझने की
अंतिम क्षण की करूण कलमलाहट
आह ![6]

यह दैहिक सुख वाह से आह में परणित होनेवाला अस्थाई आनंद है जो व्यथागत करूणा या मर्मान्तक पीडा में परवर्तित हो जाता है।

काव्य रस :

काव्यरस को व्याख्यायित करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं कि - 'अब यहाँ पर रसात्मक अनुभूति की उस विशेषता का विचार करना चाहिए, जो उसे प्रत्यक्ष विषयों की वास्तविक अनुभूति से पृथक करती प्रतीत हुई है। इस विशेषता का निरुपण हमारे यहाँ साधारणीकरण के अन्तर्गत किया गया है।'[7]

साधारणीकरण की स्थिति काव्य की सम्प्रेषण क्षमता पर तथा काव्यान्तर्गत कथ्य की संवेद्य शक्ति पर निर्भर करती है। जब काव्य वैयक्तिक अनुभूतियों से होता हुआ सार्वजनिक संवेदना से जुड़कर समष्टिगत सामान्य अनुभावों से जुड़ जाता है तब काव्य का वर्ण्य आनंद की दिव्यता से और हर्षोल्लास की भावना से जुड़ जाता है। काव्य रस में स्थूल दैहिक ऐन्द्रियता का अभाव रहता है, यह मन की चिन्तन शक्ति या भावात्मक अनुभूति की उदात्तता से जुड़कर उभरता है। डा. नगेन्द्रने भी दैहिक अनुभवन के स्थानपर मानसिक आधार को ही स्वीकारते हुए उसे अधिक सूक्ष्म अनुभूति से जोड़कर सही माना है। (रस सिद्धान्त डा. नगेन्द्र पृ. ३१८)

आचार्य विश्वनाथने काव्यानन्द को सत्वप्रधान अर्थात प्रत्यक्ष ऐन्द्रियता से रहित अखण्ड अर्थात विभावादि की पृथक अनुभूति से रहित, चिन्मय अर्थात स्थायी माना है। इसे उन्होंने ब्रह्मानंद सहोदर स्वीकार करके रस के समान ही आस्वाद्य बतलाया है, इसे उन्होंने लोकोत्तर चमत्कार प्राण कहा है -

सत्वोद्रेकादखण्डः स्वप्रकाशनन्द चिन्मयः
वेद्यान्तर स्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वाद सहोदरः ।
लोकोत्तर चमत्कार प्राण कैश्चि त्प्रमातृभिः
स्वाकारवद भिन्नत्वेनायमास्वद्यते रसः ॥ (साहित्य दर्पण : आचार्य विश्वनाथ पृ. १०५)

कवि तरुण ने काव्य रचना के मुहूर्त में इस प्रकार के कोई शास्त्रीय नियम तो सामने नहीं रखे थे किंतु उनका काव्यरस ऐन्द्रिय सौख्य से इतर उनकी उदात्त मनीषा से जुड़ा रहा है।

कवि स्पष्ट रुप से स्वीकार करता है कि -

यहाँ ऊपर पर हम दो पल भी रख पाते मुसकान नहीं,
मुक्त कंठ से गा पाते हम, अपने मधुमय गान नहीं।
हृदय खोलकर प्यार कर सकें, यह जग ऐसा स्थान नहीं,
हीरों की तो यहाँ परख है, हृदयों की पहचान नहीं।
हरीभरी है प्रकृति, किंतु सब जीवन झुलसे और जलें,
चलो हृदय, इस निर्मम जग से दूर कहीं कुछ देर चलें। (तारे, ओसकण और चिनगारियाँ पृ. ३३)

कवि इस भावात्मक आवेशित आनंद को और अधिक स्पष्ट करता हुआ कहता है -

जीवन मधु में आज हृदय की,
इतनी डूब चुकी हैं पाँखें
रुद्ध हुआ गुंजार कुसुम ही,
मेरा कारागार हो गया।
मेरे मन पर मधु गीतों का,
एकाकी अधिकार हो गया,
इतना मधु आया फूलों मे,
फूलों को ही भार हो गया। (तारे, ओसकण और चिनगारियाँ पृ. ३३)

कवि इस नश्वर संसार की उपलब्धियों को आनंद की वस्तु नहीं मानता, वह अपने गीतों को लोकोत्तर आनंद की सृष्टि के लिए रचता रहा है -

आह अनश्वर प्रिय को क्या दूँ
नश्वर जग की वस्तु पुरानी।
किन्तु गीत यह मेरा अपना
विधि की नहीं, स्वयं की रचनां।
भेंट यही, अनमोल, अमर लो,
मेरी प्राण प्रिये कल्याणी। (तारे, ओसकण और चिनगारियाँ पृ. ३३)

कवि अपने रससिक्त मन को खोलकर दिखलाता हुआ कहता है -

यह पूनम का नहीं गगन है।
भाव भरा यह कवि का मन है।

बह जाएगा, जल थल अम्बर, लो रस की हिल्लोल उठाऊँ
तो कवि का मन खोल दिखाऊँ ।[6]

ब्रह्मास्वाद रस को ब्रह्म काव्य सहोदर कहकर व्याख्यायित किया गया है । काव्यशास्त्रियोंने इसे काव्य के सतही आस्वादन के प्रभाव से कहीं अधिक सूक्ष्म और श्रेष्ठतर माना है । ब्रह्मानन्द का सत्य स्वरूप अकथनीय है । जब तक यह लोकमुक्त नहीं बनता तब तक यह गूढ रहस्यों से ही घिरा रहता है । शब्दों के माध्यम से इस पूर्णरूप से विवेचित करना संभव नहीं है । भारतीय निर्गुण मतावलम्बियों ने अपनी काव्यरचना में इसे व्यक्त करने का यत्न किया है । संत वाणियों द्वारा यह व्याख्यायित हुआ है । यह ब्रह्मानन्द अनिवर्चनीय भक्ति के अनुभवों से पुष्ट होता है, किंतु यह अनुभव शांत रस तक ही मर्यादित है । भक्त आचार्यों ने इस भक्ति के पाँच भेद स्वीकार किये है - शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा मधुर ।

भक्ति के इन पाँच भेदों में अभिधानों के अन्तर्गत भेद प्रभेद हैं किंतु वर्गीकरण सभी का यही है ।

कवि तरुण इस इस अनंत सुषमा का अनुभव कभी मनुष्य की अनंत अभीप्सित इच्छाओं में करते हैं तो कभी प्रकृति की मनोरम घटाओं में, जैसे -

गहरा नीला आकाश, चमकती धूप, मखमली हरियाली,
हैं पवन झकोरे, मधुर मधुर, सरिता लहराते जलवाली,
विस्तृत मैदानों के आगे, लेटीं नीली गिरिमालाएँ,
हैं मौन खडे भावुक तरुवर, स्नेहाकुल फैला शाखाएँ ।
मैं देख रहा इस शोभा को, विस्मय विमुग्ध सा हुआ मौन ।
रोमांच हो रहा रे मुझको, इस सुन्दरता का स्रोत कौन ?[7]

कवि भले ही इस रस का स्रोत प्रकृति की मनोहरता मे खोज रहा हैं किंतु उस अज्ञात और अनंत शक्तिसम्पन्न ईश्वर के प्रति भी अपनी निष्ठा व्यक्त कर रहा है, वह यह भी कहता है कि -

मै खोज रहा वह तार
जहाँ से मिलता है जग को गुंजन
मैं खोजरहा वह प्राण
जहाँ से मिलता है जग को स्पंदन ।[8]

इसके साथ ही भक्तिरस तथा महा मधुर रस के अन्तर्गत कविने अपना परोक्ष कथ्य ही व्यक्त किया है । भक्तिरस में वह अनन्त शक्तिवान ईश्वर के प्रति श्रद्धानत है तो महामधुर रस में वह श्रृंगार के संयोग एवं वियोग के संवेद्य क्षणों को भोगता हुआ अकथनीय आनंद का अनुभव करता है । कवि न तो सांसारिक व्यथाओं से त्रस्त है, न लौकिक आपदाओं से वह थका हारा है । उसके अन्दर यही महामधुर रस संचरित हो रहा है जिसके बल पर वह कहता है -

मैं प्रलय की आँधियों में से निकलता चाँद
मेरा हास तो देखो .

कर न पाएगा कभी भी राहु मेरा ग्रास,
यह विश्वास तो देखो ।[11]

राग :

रागात्मक अभिव्यंजना के प्रति कवि बहुत ही उदार रहा है । वह राग, रस और रंग में सरबोर है, अपने अन्दर की दिव्य आभा से परिचित है । अंधकार के प्रतारण का उसे भय नहीं है । तभी तो वह कहता है -

सूरज चाँद सितारों पर तो मुझे नहीं विश्वास है,
क्योंकि उजाले का यह साधन, काल तिमिर का ग्रास है,
पंथ सुझावे और राह के रोड़े कर दे भस्म जो,
ऐसी एक अमर ज्वाला है, जो मेरे ही पास है ।[12]

कवि में स्थिरता या जडता जन्य कोई ऐसी ज्ञान की तथ्यात्मक जिज्ञासा नहीं है जो उसे कुन्द करके पत्थर बना दे । वह राग रंजित होकर कलकल निनादिनी नदी की तरह अपने उमंगित अन्तर्मन की उल्लसित भाव सरिताओं को गति देने के पक्ष में है, वह उत्तंग हिमिगिरि की-सी जडता नहीं चाहता बल्कि उसे तो प्रवाहित नदी की धार-सा चांचल्य चाहिए जिसमे जीवन का संगीत निनादित हो -

रजत शिखर मत मुझे बनाओ,
उन्नत हिमगिरि का ।
कल कल स्वर में मुझे
हिमानी सा ही बहने दो ।।[13]

इसी तरह वह अपनी अन्तर्धारणा को व्यक्त करता हुआ कहता है -

जब जब गिरा मैं अर्घ्यजल बन कर गिरा,
जब जब उठा, तब दीप की लौ-सा उठा,
जब जब बढा तब काल के रथ-सा बढा,
जब जब रुका, बन पाँव अंगद का रुका,
पथ से फिरा भी तो, बहुत कुछ यों कि जैसे,
हाथ अर्जुन के खिंची गांडीव धनु की डोर ।
प्रबल जिसकी प्रेरणा से तीर जाता,
तोडने आकाश चुम्बी चोटियों के छोर ।।[14]

डा. रामदरश मिश्र ने इस संदर्भ में उचित ही कहा है कि, 'उनकी कविता में जीवन का रस है और वह रस कभी सूखा नहीं है, उन्होंने कविता को वास्तव में जीया है, वस्तुतः अपने समय के कवि की जिन्दगी प्रायः चार-पॉच वर्ष की होती है, कवि चुक जाते हैं, लेकिन डा. खण्डेलवाल की कविता निरंतर चलती रही है, यह कविता के प्रति इनकी गहरी आस्था का प्रतीक है, एक बड़ी जिन्दगी, एक बड़ा त्याग, एक बड़ी यथार्थता..... ।[15]

कवि अपनी रागात्मक उद्भावनाओं को जब सतरंगी परिकल्पनाओं से अभिमंडित करके व्यंजित करता है तो उस राग में एक आत्मीयता का उदात्त भाव तथा सम्प्रेषण की तीक्ष्ण शक्ति विद्यमान रहती है। कवि तरुण के काव्य में रागात्मक सरलता सर्वत्र उद्भाषित होती है। डा. प्रकाशमनु के अनुसार, 'छाया वादी गीतो से शुरु हुई तरुण की काव्य यात्रा समकालीन फलक पर आकर इतना कुछ खुद में समेट लेती है कि आज के मरणधर्म क्रूरकर्मा, चार फुटे आदमी का एक्स-रे हमारे सामने खुल पडता है। यह राहत की बात है कि इस ऊहापोह भरी लम्बी अनगढ़ यात्रा में वह रुके नहीं, बढ़ते ही गए हैं।

निपट कच्चेपन से शुरु हुई उनकी यात्रा अन्ततः उन्हें एक 'मैच्योर' कवि के रुप में प्रतिष्ठित करती है, जिसके कलात्मक सामर्थ्य की अनदेखी करना नामुमकिन है।[16]

कवि तरुण के काव्य मे रागात्मक ऊर्जा का स्रोत उनकी दवंग और जीवटभरी जिजीविषा ही रही है, उन्होंने न तो कभी जीवन के संघर्षों में पराजय स्वीकार की है और नाही कभी किसी चुनौती के आगे झुके है। डा. आनंद प्रकाश दीक्षित का कथन इस संदर्भ में उल्लेखनीय है कि, 'क्योंकि वह कसकर जिया है। वह इस तरह जिया है कि जीवन के सब कुरूप को चिकना-चमका लेता है। असुन्दरता कहीं कुछ रही ही नहीं जाती। चूँकि उसकी यह खोज जटिल के बीच से होकर अपना रास्ता बनाती है, इसलिए अथक परिश्रम की माँग करती है, कवि सुन्दरता का मधुर स्वप्न आँखों में भरे धरती पर स्वर्ग बनाने का सतत यत्न करता रहता है, वे चिर तारुण्य के प्रौढ कवि हैं... जीवन के उतार चढाव जीवन की उदारता व्यग्रता, खींचतान, अश्रु-हास,. निर्माण और ध्वश, सम्पन्नता, विपन्नता, सम्यता असम्यता आदि के द्वन्द्व के बीच यात्रा... उनकी ढेर सारी कविताएँ, इसी युगबोध और युग संत्रास की गवाही देती है... अपने समय और परिवेस के प्रति उनकी जीवन्तता और जागरूकता का परिचय देती हैं।[17]

रागात्मक वृत्ति के तहत कवि ने अपनी वे समस्त सांस्कृतिक स्मृतियों की रसवंती गंधे व्यक्त की है जो हमारी सबकी अन्तर्मनी संवेदनाओं से जुडी हैं। जैसे -

आती वे सुधियाँ बार बार,
जैसे धनिये की गंध लिए, संध्या के खेतों की बयार।[18]

या फिर यह चित्र देखिए -

गिरे वियोगी के जो आँसू धरती पर हो गए ओसकण,
मोती हुए, गिरे जो जल में, नभ में जा नक्षत्र हो गए,
पीडा से दिनरात तड़प कर कुछ तो मन की बात कह गए,
कुछ जीवन को शीष झुकाकर जो आया चुपचाप सह गए।[19]

डा. विजयेन्द्र स्नातक ने इनके विषय में उचित ही कहा है कि 'संवेदना के धरातल पर जीवनबोध, मानवता, सौन्दर्य, प्रीतिकर स्वप्न, प्राकृतिक ऐश्वर्य, जिजीविषा, आस्था, विश्वास, आदि के साथ आधुनिक युग की बेचैनी, विद्रूपता, विसंगति, बेवसी, व्याकुलता, स्पर्धाजन्य आपाधापी और परिग्रही अभीप्सा का जैसा मार्मिक वर्णन तरुण ग्रंथावली की कविताओं में सुलभ है, वह कवि तरुण की अभिव्यक्ति की सचाई को अभिजात भाषा में पूर्ण लालित्य के साथ प्रगट करता है। इन कविताओं को पढकर पाठक के मन में आधुनिक युग के संत्रास, पीडा और वेदना का ही बोध नहीं होगा। वरन मानवता के प्रति, मानवीय शास्वत मूल्यों के प्रति निष्ठा, सांस्कृतिक विरासत के

प्रति आस्था के उदात्त भाव भी जाग्रत होंगे.... । खुला विराट संसार, गतिशील समाज, कवि मन, मानव का संकुल जीवन... जो कुछ भी गहरी संवेदना प्रदान करने में समर्थ है, वही सब कवि तरुण की सर्जना का अखण्ड व विश्वसनीय स्रोत आज तक उनके काव्य में बना रहा है ।[23]

इस प्रकार कवि की संवेद्य अनुभाव योजनाएँ इस रागात्मक संगति को साथ साथ व्यक्त करती हैं जिनसे कविता में अनुराग, उमंग, आकर्षण और उदारता की प्रभावान्विति समन्वित हुई है । राग हृदय की वस्तु है जो मन के अन्तर्कक्षों से ध्वनित होती हुई सार्वजनिक संवेदनाओं के साथ सहगामिनी बनती है । कवि का यह रागात्मक आलाप बहुत कुछ हमारे इर्द गिर्द ही महसूस किया जाता रहा है ।

श्रृंगार रस :

कवि श्रृंगार का उपासक रहा है, वह शास्वत प्रेम का पक्षधर रहा है । एक अजेय और अमर स्नेह सम्बन्धों की गहन अनुभूतियाँ उनके काव्य में बिखरी पडी हैं, श्रृंगार में उल्लास है, उमंग है, उद्वेग है, आनंद है, सुख है और साथ में करुणा है, पीड़ा है, दुख है, दर्द है, व्याधि है, लगन है, रुझान है, संयोग और वियोग जन्य आत्मीय लगाव का परम अनुरागी अनुबन्धन है । व्यक्ति संयोग से वियोग की इस प्रणय यात्रा में देह से विदेह होने तक की अनुभव प्रक्रिया से गुजरता हुआ प्रणय के सतरंगी अनुभवों की अनुभूतियों से संलग्न होता है । उनका रसाग्रही काव्य किसी मानद शास्त्रीय रस विवेचना का मुखापेक्षी नहीं रहा और ना हीं उन्होंने किसी रसाचार्य रूप में स्वयं को स्थापित करने का दम्भ पाला है, उनकी कविता में रसावेशित क्षण सहज और स्वाभाविक रूप से ही अवतरित हुए है, किंचित भी सायास या साभिप्राय नही हैं । कवि तरुण के गीतों में रसराज श्रृंगार के वर्णन भी मनुष्य की सहज दैनदिनी से ही जुडकर आकार ग्रहण करते हैं, यथा -

तुमको पाकर हे मधुर हृदय,
मुझको न मरण का होता भय ।
दुख की रातों का अँधियारा, नयनों का अंजन हो जाता ।
जीवन होता संगीत महा,
धरतीपर आता स्वर्ग वहा,
भवतीर्थ तुम्हारे साथ नहा, यह जीवन पावन हो जाता ।[20]

कवि अपने वैयक्तिक प्रणय व्यापार में भी प्रकृति की साझेदारी विस्मृत नहीं करता, वह एकाकी सम्मोहन के मृगजाल में नही फँसता बल्कि प्रकृति की मनोरम भागीदारी के प्रति वह दुराग्रही रहा है, यथा -

रतजगा करते हुए, ले नाव हंसाकार अपनी
लीन हो जाएँ क्षितिज में, है बसा जिस ओर, सजनी,
किरणकुंजों से घिरा संगीत का नीलम नगर
हम तुम वहीं चल दे
दूध जैसी चाँदिनी में
एक नन्हीं नाव पर
हम तुम कहीं चल दें ।।[21]

शिखर संगीत

हृदय की रागात्मक अभिव्यक्ति गीत है। मन के मनोरथों की संवेद्य रागिनी का नाम गीत है, गीत अन्तस्थल की गहराई में रच रहे उत्सवी आनंद की रससिक्त गाथा है, गीत कवि की भावात्मक अनुभूतियों का सतरंगी इन्द्र धनुष है जो अन्तस् के श्रावणी-पर्व की उल्लसित हरीतिमा को व्यक्त करता है, गीत वही कवि गा सकता है, जिसके हृदय में राग है, जो जीवन के विविध रंगो में सराबोर है, जो रस का अवगाहन है, जिसका संवेदनशील हृदय कभी हँसता है, मुस्कराता है, अट्टहास लगाता है तो कभी रोता है, कलपता, बिलखता है तो कभी मौन रहकर अन्तर्मुखी भावों में शांति की परिशोध करता है बहिर्मुखी जगत् के संत्रास और शोषण से साक्षात्कार करता हुआ शोक-संतप्त हो जाता है। कभी वह आत्मजिजीविषा में ग्रस्त होकर अपने केंचुल में सिमट जाता है तो कभी अनन्त विस्तार में फैलकर परागही पीडाओं से व्यथित होकर श्लथ हो जाता है। कभी वह व्यक्ति होकर एकांतजीवी व्यथाओं से संत्रस्त होकर टूटने लगता है तो कभी समष्टि बनकर वैश्विक स्तर पर अपनी संवेदनाओं का प्रसरण करता हुआ प्रतिशोध में प्रचण्ड ज्वालामुखी बनकर धधकने लगता है, ऐसा ही एक विरल व्यक्तित्व है तरुण !

तरुण के बहुआयामी व्यक्तित्व विकास की महायात्रा में उसके संवेद्य भावों के विविध पडाव अहम भूमिका का निर्वाह करते हैं। कभी तो वह एक सुकुमार शिशु की तरह निहायत भोलाभाला, निरभिमानी, दुलारभरी आँखों से निहारता अबोध-सा शिशु दृष्टिगत होता है तो कभी अत्यन्त गम्भीर मनीषी विचारक और गहन दार्शनिक की भूमिका में हमे दिशानिर्देश करता-सा प्रतीत होता है। मैं जैसे मंत्रमुग्ध तथा अवाक् जैसी स्थिति में हूँ। तरुण का काव्य-प्रदान अप्रतिम तथा अनन्वय है। वर्तमान काल दरिद्रतम काल है जहाँ दूर-दूर तक तरुण जैसी प्रातिभ छवि का अवलोकन नहीं होता। ऐसे अकालकाल में तरुण का काव्य प्रदान समय का कीर्तिमान है। तरुण युगजयी कवि है। काव्य में जीवन्तता भी है और उदात्त भावविन्यास भी, कल्पना के अधूरे क्षितिज भी हैं और प्रस्तुति की अनूठी छटा भी।

कवि 'तरुण' आज के युग का ज्वलन्ततम हस्ताक्षर है जिसमें मध्यकालीन कलाचेतना का स्पर्श है तो आधुनिक काल के प्रयोगधर्मी नवीनतम तेवरों को भी देखा जा सकता है। कवि तरुण का प्रातिभ पक्ष है कविताओं में अर्न्वेदना का स्वर जो हमारे आस-पास ही परिभ्रमण कर रहा है। यह कवि जितना मस्त है, उतना ही व्यथित भी है। यह जितना पूर्ण है, उतना खण्डित भी है। इसमें मन-स्पर्शी कलात्मक अट्टालिकाओं के शिखर-ध्वज भी लहरा रहे हैं और भग्नावेष खण्डहर भी अपनी अन्तर्व्यथा को व्यक्त कर रहे हैं।

तरुण का साहित्य-प्रदान विरल भी है और व्यापक भी। जीवन के अनुभूत तथ्य हैं और एक अथक यायावर की सारस्वत यात्रा भी। लेखन की प्रौढ-गंभीरता और चिंतन की विरल प्रस्तुतियों ने मन को रागरंजित कर डाला है।

जीवन्तता की यवनिका के पीछे भी कवि का लौह व्यक्तित्व ध्वनित हो रहा है, यह लोहा जितना ऊष्ण है उतना ही सुकोमल भी। गीतों में जैसे जिन्दगी के दस हजार रंग बिखरे हुए हैं जिन्हें पकडने के लिए मुझे दस सहस्र वर्षों तक अध्यवसायी बनकर जीना होगा। ये गीत मन की व्यथाओं पर कवि के हर संकल्पों का विजय-अभिमान हैं। ये गीत कवि के अटूट विश्वासों के जीवन्त दस्तावेज हैं जिनमें जीवन के विशिष्ट सुकुमार क्षण बन्दी हैं।

प्रथम किरण से लेकर शिखर-संगीत तक की कवि की गीत-रचना जिन विभिन्न रागात्मक पडावों से प्रसारित हुई है, वे सभी कवि की जीवन्त अनुभूतियों के साक्षात् साक्षी हैं।

सुख और दुःख के आवेग बार-बार स्थानान्तरित होत हैं, बार-बार सौख्य के अविरल प्रवाह को तोडकर दुखद पीडाएँ कवि को व्यथित

कर जाती हैं और कवि चुनौतीपूर्ण ढंग से इन्हें स्वीकार कर लेता है। कवि इसे सामान्य संयोग मानकर ही आत्मसात् कर लेता है -

लक्ष्य जब रहता थोडी दूर,
तभी दुख आते हैं भरपूर।
अँधेरा बढ़ ही जाता घोर, सूर्य उगने से कुछ पहले
बटोही ठंडी साँस न ले।

कवि जब पीड़ाओं से मस्त होकर शान्त होकर बैठता है, तभी उसका अन्तस् उसे उद्वेलित करता हुआ कहता है -

मुक्त पड़े पथ सारे तेरे।
जीवन में सब कुछ जहर मगर लगता था।
अब तो इधर तलवार उधर खंजर
उधर कटौती,
भोले गीत का तो अपहरण कर
उडा ले गए, संस्कृति के आतंकवादी,
करते सर्वनाश और बर्बादी,
गीत को छुडाने में कहाँ से लाऊँ
मुँहमाँगी फिरौती !
अब जुड़ी मौलसिरी-से महकते
मासूम नील चिरैया-से चहकते
सजल कपूरी गीत लिखने की हिम्मत नहीं होती।

यह लो मेरे हस्ताक्षर

बडा अच्छा लगता है जब कोई बात हमारे मर्म का बेधन करके हमारी संवेदनाओं को झंकृत करती है। बडा अच्छा लगता है जब काव्य की कुछ विरल पंक्तियाँ अपनी अनन्त अर्थवत्ता के साथ हमारे हृदय में उतर जाती हैं और बहुत समय तक उनके प्रतिनिनाद हमारे आस-पास गुंजायमान होते रहते है। बहुत अच्छा तब भी लगता है जब कोई जीवन्त संन्देश या पौरुष से फुदकता उद्घोष हमारे क्लीव चिन्तन को अदम्य साहसी बना जाता है एक ही पल में।

डा. विष्णु विराट के अनुसार यह सब कुछ सोचता था, तरुण से मिला। तरुण की कविताओं में मिला हैं। एक अपराजेय प्रज्ञा पुरुष से मेरा साक्षात्कार करा जाती हैं वे तमाम कविताएँ जो मैंने उनकी कृतियों से पढ़ी हैं, गुनगुनाई है। कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि कविता की जिस तलाश में मैं सहस्रों वर्षों से प्रतीक्षारत था, जिस काव्याभिव्यक्ति की मुझे जन्मजन्मान्तर से प्रतीक्षा थी, उन सभी कविताओं का अक्षय कोश तरुण के पास है। आगे डा. विराट सम्बोधन करते हैं -

सुनो भाई 'तरुण',

बहुत कुछ आपने अपने रहस्यमय व्यक्तित्व में गुप्त रखा है। जो कुछ आपने कह दिया है, वह अप्रतिम और अनन्वय है। कल्पनाओं

की अनंत ऊँचाइयों से विचरण करते आपके भाव-कपोत अनेक अज्ञात आकाशगंगाओं में जैसे नहाकर, भींगकर, रससिक्त होकर धरती पर उतरते हैं। किन्तु बन्धुवर, अभी कुछ और राजहंस आपके अन्तर्नीड में पंख फड़फड़ा रहे हैं। वे उड़ने को व्यग्र हैं। निकट भविष्य में ही मुझे अनुभव होगा कि वे खुले व्योम की निस्सीम परिधियों को पंख में भर रहे हैं। निश्चित ही आपका काव्य प्रदान श्रेष्ठतम और अन्तर्मन के गहनतम प्रकोष्ठों को जगमगा देने वाला है।

लगता है कि गीतकार जितना ऊपर से उपवन-उपवन है उतना ही अन्दर से बियावान जंगल की तरह कंटकावृत भी है, जितना वह बाहर से खुशबू-खुशबू है, उतना ही अन्दर से रूखा-सूखा भी है, कहीं कुछ है तो कवि को उठाकर हिमालय की तरह अजय अहं अटल बनाने के लिए संकल्पधर्मी हठ प्रदान करता है किन्तु कभी लगता है कि कवि रेत की पहाड़ी-सा हवाओं में उड़ रहा है, इस चट्टान के नीचे सुकुमार चिड़ियों के बच्चे-सा मन भी है जो वर्षा-धूप-आँधी से डरता है, उसने विनाश से साक्षात्कार किया है, पीड़ाओं से वह व्यथित है, आज भी तकिए की खोल उसके आँसुओं से भीग जाती है, एक क्षुब्ध सागर है उसकी आँखों मे जो अनुबंधन और मर्यादा की भित्तियों से रोक के रखा गया है, नाश की भूमि पर निर्माण के गीत गानेवाला, टूटते घरौंदे को बार-बार बनाता हुआ यह थका-हारा कवि जितना शौर्य प्रदर्शित कर रहा है, वह उसका अपना संचित पौरुष है, उसका अपना कमाया हुआ मद है जिसे वह दुशाले की तरह ओढ़े हुए हैं, आप कवि की आत्मा को टटोलिए, देखिए जरा उसके गीतों की छाती में धड़कते हृदय को, सुनिये उसके अन्तरस्थ क्रन्दन को, आपको इन्हीं गीतों में कवि के टूटने और बिखरने की आवाज सुनाई देगी। एक विशाल वटवृक्ष है कवि, जिसकी सहस्रों टहनियाँ सूखकर चरमराकर टूटती हैं, कोई कवि पुनः नूतन शाखा-प्रशाखाओं को प्रसरित कर लेता है, अपनी आत्मा से उलीचता है वह अपने व्यक्तित्व की लौहधर्मिता, और फिर एक अजेय-चट्टान-पुरुष की तरह अभिनीत मुद्रा में अपने कालजयी उद्घोष को विज्ञापित करता है। यह कवि जगत्जयी नहीं अपितु आत्मजयी है, काल के प्रस्थर-प्रहारों को अपनी छाती पर हँसकर झेल जाता है और उफ तक नही करता, यह कवि का सांसारिक हठ है, आत्मीयता के वृत्त में बँधा यह सुकुमार शिशु आज भी कहीं खरगोश है तो कहीं हिरणशावक। उसकी छाती पर आज भी एक असह्य बोझ है, एक वजन है जो वह उतार नहीं पा रहा -

लगेज मेरे मन का
कई क्विंटलों का, कई टन का,
लादने-लदाने को हो ही गई है समस्या
इतना सब मेरे साथ जा सकेगा क्या ?
या कि मंजिल पर ?

कवि ने एक दर्पभरा कवच ओढ़ रखा है जिसने उसे सुरक्षित रहने का अभय भी प्रदान किया है, किंतु कवि अपने संवेदनशील सुकुमार हृदय की कोमलता को भी सुना नहीं पाता, वह बार-बार उद्घाटित करता रहता है -

आज अपना अन्तःकरण हो जाने दे
जैसे उजला नील कमल
हो जा तू मन मगन
खींच अपने भीतर गहरी-सी साँस
मिटा दे अपनी कैंसरी गाँस

ओ भोले ! चुप होकर जलन से निकाल ले,
आत्मा में गढ़ी जनम-जनम की अपनी महीन फाँस !

कवि का जुझारु तेवर बार-बार सामने आई विपदाओं से जूझता है । बार-बार वह चुनौतियों का सामना करता है और बार-बार वह नगर के आरोपित संत्रास से भाग कर कहीं जंगल में छिपने को भी व्यग्र हो जाता है ।

- जी करता, जा रहे किसी चट्टानी जंगल में । लेकिन वह जंगल दरख्तों, घाटियों या वीरानियों का नही है वह चट्टानों का जंगल है, कवि यदि जंगल में भी रहना चाहता है तो वहाँ भी चट्टानों की उपस्थिति उसके अटूट और निर्भीक संकल्प को ही रेखांकित करती है ।

'शिखर संगीत में कवि कुछ शांत-सा है, कुछ थका हुआ, कुछ व्यथित-सा, जीवन की सान्ध्य बेला का धूमिल एहसास जैसे मंदिर में आरती की घंटियाँ बज रही हों, लगता है जैसे प्रकृति के सौन्दर्य पर गोधूलि छा रही है, यवनिका खिंच रही है जैसे, किंतु फिर भी कवि का अजेय गीत-पुरुष अपनी सम्पूर्ण जीवन्तता के साथ इन शिखर संगीत में निनादित है । पंक्ति-पंक्ति मे झंकृत है कवि तरुण का चिर तारुण्यमय जीवन-संगीत ।[22]

कवि तरुण के गीतों में श्रृंगार है, प्रेम है, अनुराग है, स्नेह है, आत्मीयता है, समर्पण है, साहचर्य है, निवेदन है, मान है, मनावन है, विरह है, अन्तराल है, विदग्धता है, पीड़ा है, दर्द है, अवसाद है और वह सब कुछ है जो एक संवेदनशील कवि के भावलोक मे विद्यमान रहता है । डा. सुन्दरलाल कथूरियाने उनकी वैविध्यपूर्ण भावभूमि और रागत्मक रसनिर्झरी की ओर विस्तार से प्रकाश डालते हुए लिखा है कि 'डा. तरुण के विपुल काव्य संसार पर दृष्टिपात करते ही सहृदय पाठक यह जान जाता है कि उनके गीतों में वैविध्य के साथ मार्मिकता भी है । कवि 'तरुण' के गीतों में आत्मानुभूति और भोगे यथार्थ के साथ जीवन-संघर्ष, जीवट, जिजीविषा, युगीन छल-छद्म, विसंगति-विद्रूपता, बेबसी, बेचैनी, जीवन की नश्वरता-क्षणभंगुरता का एहसास ही नही, प्रकृति के प्रति असीम आकर्षण, मानव-मूल्यों के प्रति अटूट आस्था, मानवीय गौरव के प्रति अडिग विश्वास, आस्तित्व-भाव, सांस्कृतिक उदात्त चेतना, प्रणयानुभूति, देशानुराग और आत्म-गौरव के स्वर भी है । मनुष्य की उदात्त चेतना और अपराजेय दुर्धर्ष व्यक्तित्व के कारण वह उसकी अप्रतिहत विकास-यात्रा-अन्नमय कोष से आनन्दमय कोष की ओर प्रस्थान तथा अन्तिम विजय के प्रति आशान्वित है । कवि का स्वर सर्वत्र आस्था और विश्वास से दीप्त है और घोर निराशा के क्षणों में भी न तो वह निराश होता है, न हतप्रभ ही । प्राकृतिक उपादान कवि के प्रेरणा-स्रोत हैं-वह उनसे उन्मुक्त हास, निश्छल संगीत, अदम्य उत्साह, स्वातन्त्र्य-चेतना और कभी हार न मानने की प्रेरणा लेता है और उनसे यही मनुहार करता है कि उसे इसी प्रकार का जीना सिखा दें । कवि के इस प्रकार के कथन कभी सुमित्रानन्द पंत की, तो कभी महादेवी वर्मा की स्मृति दिला देते हैं । वह भी महीयसी महादेवी की तरह पीडा में भी आनन्दानुभूति करना चाहता है ।

कवि 'तरुण' मानव-मूल्यों के गीतकार हैं । उनके मन में प्रारंभ से ही मानव-मूल्यों के प्रति रागात्मक आकर्षण रहा है । 'मानव', कवि की दृष्टि में, किसी प्रकार भी देवों से कम नहीं, बल्कि वह अपनी तमाम दुर्बलताओं के बावजूद देवों से कहीं अधिक सुन्दर, अधिक कमनीय, अधिक आकर्षक और अधिक महत्वपूर्ण है -

मत करो व्यर्थ गुणगान स्वर्ग के देवों का,
उस कामधेनु का, कल्प-वृक्ष के मेवों का,

मत व्यर्थ विलासी देवों के गुण गा-गा कर-
तुम मान घटाओ, मानव ! मानव-जीवन का,
होंगे तो होंगे देव-अतुल धन-बल-सागर,
पर मानव अपनी दुर्बलता में भी सुन्दर ![23]

कवि ने अपने गीतों में जिन मानव-मूल्यों को प्रतिष्ठा दी है, उनमें संघर्ष और जिजीविषा, कर्मठता और कर्म, आस्था और विश्वास का स्वर सबसे ऊँचा है। मानव और मानव-समाज की प्रगति का बहुत कुछ श्रेय इन्हीं मानव-मूल्यों को है। मानव-जीवन के द्वन्द्वों-संघर्षों से कवि अपरिचित नहीं, पर उसका अडिग विश्वास है कि इन भीषण संघर्षों की अग्नि में तपकर, मानव कुंदन के समान भास्वर रूप में प्रगट होगा और तब यह सृष्टि इतनी सार्थक और कल्याणी हो जाएगी कि मानव-जाति को किसी स्वर्ग की तलाशमें भटकना नहीं पडेगा।

सुख-दुःख मानव-जीवन के दो कूल हैं। दुःख, अवसाद और पीडा के अभाव में सुख और आनन्द का मोल ही क्या है ? कवि 'तरुण' ने भी जीवन में बहुत दुःख झेले हैं, अवसाद और निराशा के क्षणों की उसके जीवन मे कोई कमी नही है और पीडा तो उसकी चिरसंगिनी है, पर वह उसका आभारी है जिसने उसे पीडा और जलन का यह वरदान दिया है, क्योंकि यही पीडा मनुष्य को सच्चे अर्थों में जीवन के सत्त्व से जोडती है और उसे जीवन-दान देती है। अब वह पीड़ा दैवी या मानवी, कहना कठिन है, क्योकि कवि ने इस पर रहस्य का पर्दा डाल रखा है। कवि के शब्दों में -

जिसने पीडा का दान दिया,
नित जलने का वरदान दिया
कंठों को मीठा गान दिया, उसकी जय हो, उसकी जय हो ![24]

यदि में अन्तरीक पीडा का यह मधुमय उपहार न पाता
तो मार्मिक आघातों से वंचित हो तार मृतक रह जाता !
तुमने प्राण झनझना मेरे, मुझको मंजुल गान दे दिया !
तुमने जीवन दान दे दिया ![25]

दुःख, अवसाद, पीड़ा और आंसू रोने से दूर नहीं होंगे, उनसे जूझना होगा, जीवट, जिजीविषा, और साहस से काम लेना होगा, क्योंकि इन मूल्यों को आत्मसात् किये बिना मानव अपने जीवन को न तो कोई सार्थक दिशा दे सकता है, न जीवन के कंटकों को ही दूर कर सकता है -

रोने से दुख दूर नहीं होने का,
आँसू से पत्थर नहीं होने का,
जीवन भर चाहे तुम कुंकुम को पूजो
काला काजल सिन्दूर नहीं होने का ![26]

'संघर्ष-पथ पर' बढ़ते हुए कवि 'तरुण' निरन्तर संघर्ष करने की प्रेरणा देते हैं। साधक जब सुख की कामना छोडकर साधना-

पथ पर अग्रसर हो जाता है तो मृत्यु भी उसके लिए वरदान हो जाती है, उसके लिए फूल और अंगार एक समान हो जाते हैं और जीवन के झंझावात उसके मार्ग को रोक नहीं सकते। संघर्ष पथ पर बढनेवाला ऐसा साधक स्वयं विषपायी शंकर हो जाता है - न वह तूफानों से डरता है, न ज्वार-भाटे से ही। भवसागर में जब वह अपनी जीवन-तरी को छोड देता है तो उसका एकमात्र अवलम्ब होता है संघर्ष। इसीलिए कवि 'तरुण' मनुष्य-मात्र को निरन्तर संघर्ष करने की प्रेरणा देते हैं, क्योंकि यही संघर्ष मनुष्य की प्रगति का मूल है, उसके लिए सर्वाधिक मूल्यवान है, दूसरे शब्दों में श्रेयस्कर मानव-मूल्य है। (यहाँ ध्यातव्य यह है कि 'मूल्य' शब्द की व्युत्पत्ति 'मूल' से भी संभव है।) कवि 'तरुण' संघर्ष-चेतना के कवि हैं। वे अपने एक गीत में कहते हैं -

संघर्ष कर, आहें न भर !
जीवन न फूलों की डगर !
संघर्ष कर ![27]

मानव-जीवन का काम संघर्ष और जिजीविषा, आस्था और विश्वास, कर्मठता, विवेक, धैर्य, श्रम और कर्मण्यता के बिना नहीं चलता। इन भावो की अभिव्यक्ति कवि 'तरुण' के ***'तू अपने पथ पर बढता चल', 'माँझी, साहस छोड न देना', 'ओ, चट्टान-से मल्लाह', 'यों, काम नहीं चलता जग में', 'आश्वासन', 'उद्दीप्त', 'मेरी गति'*** आदि गीतों में सहज ही देखी जा सकती है। कवि का अडिग विश्वास 'मेरी गति' में इन शब्दों में व्यक्त हुआ है -

जब-जब गिरा मैं, अर्घ्य जल बनकर गिरा,
जब-जब उठा-तो दीप की लौ-सा उठा,
जब-जब बढा तो, काल के रथ-सा बढा,
जब-जब रुका, तो पाँव अंगद का रुका ![28]

मानव-जीवन में स्नेह और प्रेम का जितना महत्व है, उतना और किसी चीज का नही-न अपार सम्पदा का, न स्वर्ग का ही। इसके सामने कल्पवृक्ष, अनन्त आकाश और सप्त सागर भी तुच्छ हैं। स्नेह और प्रीति मानव-चेतना के उज्ज्वल वरदान हैं। कवि ने 'चाह' शीर्षक गीत में इसी अमूल्य निधि की कामना की है। स्नेह और प्रेम का मानव-मूल्य मनुष्य में निश्छलता, सहजता और मस्ती का भाव तो पैदा करता ही है, प्राणी-मात्र से प्रेम करना भी सिखाता है। प्यार का यहभाव अणुबम से जलते संसार कर शीतल उपचार है, आनन्दानुभूति का आगार है तथा जीवन का सार-सर्वस्व है। कविवर 'तरुण' ने अपने अनेक गीतों में लौकिक और अलौकिक प्रेम की मार्मिक व्यंजना की है। ***'सबका अपना-अपना मन है', 'इस पीडा का उपचार न कर', 'वे सुन्दर से दिन बीत गये', 'कितनी मधुर वह रात थी' 'मधु-भार', 'मुझको एकाकी गाने दो'*** आदि गीतों को मेरे इस कथन के साक्ष्य-रुप में देखा जा सकता है। उनके गीतों में संयोग की सुखद अनुभूति के साथ विरह की अश्रुमिश्रित अनुभूति भी है, जो स्वयं अधिक मार्मिक और हृदयावर्जक बन पडी है। संसार में सर्वाधिक मूल्यवान वस्तु है हृदय और उसमें बसनेवाला प्रेम। इस प्रेमिल हृदय के टूटने से बडी त्रासदी और कोई नहीं हो सकती, किन्तु दुःख की बात तो यह है कि हृदय को टूटने की ओर कोई ध्यान ही नहीं देता -

एक चूडी टूटती-तो हाय, हो जाता अमंगल !
मेघ में बिजली कडकती-काँपता सम्पूर्ण जंगल !
भाग्य के लेखे लगाते-एक तारा टूटता तो !

अपशकुन-श्रृंगारिणी के हाथ शीशा छूटता तो !
दीप की चिमनी चटकती-तट तिमिर का भय सताता !
कौन सुनता स्फोट ? पर, कोई हृदय यदि टूट जाता ![29]

कविवर 'तरुण' के गीतों का मूल स्वर मानव-जीवन के उदात्त मूल्यों एवं सांस्कृतिक अस्मिता से जुड़ा है। करुणा, स्नेह, त्याग, सेवा, परमार्थ, उदारता, आत्मबल, विश्वप्रेम, प्राणीमात्र की कल्याण-कामना, अहिंसा, शांति, मस्ती, संतोष, निसर्गप्रेम, निश्छलता, सहजता आदि के मानवीय भाव उनके गीतों में इतस्ततः विकीर्ण मिलते हैं। वे भय, भ्रम, संशय, छल-कपट, आडम्बर, दुराव आदि के विरोधी हैं। प्रकृति के ही समान ग्राम-जीवन के प्रति उनके मन में सहज आकर्षण का भाव है। ग्राम-संस्कृति और वहाँ के रीति-रिवाजों के प्रति कवि की ललक सदैव बनी रही। ग्राम प्रकृति के निकट हैं, सहजता और विश्वास की मूर्ति है और आडम्बर से दूर हैं - और ये चीजें कवि को प्रिय हैं। प्रकृति कवि को जीवन का आधार प्रतीत होती है। प्राकृतिक उपादान-नाना प्रकार के फूल, वृक्ष, पशु-पक्षी, हरी घास, फूली हुई सरसों, काले बादल, वसन्त, वसन्ती धूप, पूनो का चाँद, प्रभात, ओस-कण, चिड़ियाँ, हिमालय, कश्मीर की घाटी, गंगा-तट, निर्झर, समुद्र आदि कवि के आकर्षण का केन्द्र ही नहीं, उसकी प्रेरणा और रचनाधर्मिता का मूल उत्स भी हैं। इनसे कवि बहुत कुछ सीखता है, ग्रहण करता है और अपने पाठकों को भी अपने साथ बहा ले जाता है। स्वातन्त्र्य-चेतना, निश्चिंतता, मस्ती, सौंदर्यबोध, आस्तिक्यभाव, आत्मसाक्षात्कार या यों कहिए कि **'अपने को, अपने में'** पा लेने की प्रेरणा देते है। और, जो साधक अपने को, अपने में पा लेता है, वह निर्भीक हो जाता है। उसकी आस्था अडिग और विश्वास अपराजेय होता है। ज्योति-पथ के ऐसे पथिक को न अन्धकार भयभीत कर सकता है, न निराश ही -

यदि अस्त सूरज हो गया-
मेरा नहीं कुछ खो गया !
पथ-ज्योति देने को अभी-
तारे निकलने शेष हैं !
विश्वास है मन में अमर ![30]

अन्य मानव-मूल्यों के समान गीतात्मा कवि 'तरुण' के गीतों में देशानुराग एवं देशाभिमान के स्वर भी है। कवि के देश के परिवेश, उसकी मिट्टी और उसकी तमाम समस्याओं से पूरी तरह वाकिफ़ है। महापुरुषों के स्तवन, अतीत के गौरव-गान, वर्तमान दुर्दशा के चित्रण आदि के साथ कवि 'तरुण' ने इस देश की भव्य सांस्कृतिक परम्परा एवं उदात्त जीवन-दर्शन को भी अपने गीतों में पूरी कलात्मकता के साथ उकेरा है। स्वातंत्र्य-लाभ के पूर्व कवि ने जिन गीतों की रचना की, उनमें जहाँ गुलामी की जंजीरों को तोड देने की कामना है, वहाँ स्वातंत्र्य-लाभ के बाद की गीतात्मक रचनाओं में आनन्द और उल्लास का स्वर है। राष्ट्रीय अस्मिता से जुडे गीतो मे कवि 'तरुण' की राष्ट्रनिष्ठ दृष्टि देखते ही बनती है। भू, जन और जन की संस्कृति, जिनसे किसी राष्ट्र का निर्माण होता है, का सम्मिलित रूप कविवर 'तरुण' के गीतों में देखा जा सकता है। कवि 'तरुण' के काव्य का सार-तत्त्व है प्रेम-वह चाहे प्रकृति के प्रति हो या देश के प्रति, मानव के प्रति हो या असीम-अलौकिक सत्ता के प्रति, मानव-मूल्यों के प्रति हो या ग्राम-संस्कृति के प्रति। उनके गीतों में जहाँ एक ओर लौकिक प्रेम के मांसल चित्रों के साथ अलौकिक प्रेम की भी रम्याद्भुत कल्पना है, वहीं दूसरी ओर मानव, प्रकृति, देश, संस्कृति, महामानवों, तीज-त्यौहारों आदि के प्रति अनुराग के अकृत्रिम भाव भी हैं। उनके गीत सहृदय पाठकों को मानव, राष्ट्र, प्रकृति, भारतीय संस्कृति,

उदात्त जीवन-मूल्यों आदि से तो जोड़ते ही हैं, अध्यात्म चेतना और आस्तिक्य भाव के प्रति भी आस्थाशील बनाते हैं। कवि 'तरुण' ने उद्बोधन एवं प्रणय गीतों के साथ भक्त्यात्मक आध्यात्मिक गीतों की भी प्रचुर मात्रा में रचना की है। उनके इस कोटि के गीतों में कहीं-कहीं कला को क्षति बी पहुँची है।

छायावाद-स्वच्छन्दतावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद एव परवर्ती काव्यप्रवृत्तियों एवं इनके प्रतिनिधि कवियों से प्रभावित होन के बावजूद कवि 'तरुण' की शैली पर निजता की छाप है। सन् ६० के बाद वे गीत-रचना में उतने सक्रिय नहीं रहे, जितने कि पहले थे। वे भी नवीन काव्य-प्रवृत्तियों के प्रभाव से नयी कविता शैली की कविताएँ लिखने लगे, पर गीत की मौलिक सुगन्ध से उनकी अन्तरात्मा कभी मुक्त नहीं हुई। उनकी अतुकान्त कविताओं में गीति-तत्त्व किस कदर रचा-बसा है, यह अनुसंधान का विषय है। मुझे लगता है कि उनकी अतुकान्त कविताएँ भी एक सीमा तक, उनके गीति-तत्त्व से सुवासित हैं और वे सचे अर्थों में गीतात्मा कवि हैं।

कविश्री 'तरुण' के गीतों में साधारणीकरण की अद्भुत क्षमता है। उनकी शैली इतनी सहज, सुबोध, सरल, सरस और आकर्षक है कि सामान्य-से-सामान्य पाठक भी उनमें डूब जाता है तथा उन्हीं भावानुभूतियों से तदाकार हो जाता है जिनकी व्यंजना उन गीतों में है। गूढ-से-गूढ भावों और प्रश्नों को कवि 'तरुण' ने जिस सहजता के साथ व्यक्त किया है, वह कम ही कवियो मे देखने में आती है। सम्प्रेषण की ऐसी अद्भुत क्षमता, अभिव्यक्ति की निश्छलता एवं काव्य-भाषा की ऐसी मोहक पकड विरल है।

जीवन और जगत् के सौंदर्य, मनुष्य की सदाशयता, प्रकृति के रम्याद्भुत रुप, आधुनिक युगबोध, वैयक्तिक द्वन्द्व, जीवनानुभव, जीवन के उतार-चढाव, बढ़ती यांत्रिकता, अपनो की बेवफाई, युगीन संत्रास आदि ने कवि के संवेदनों को झकझोरा है तथा अभिव्यक्ति के लिए प्रेरित और विवश किया है। इन भाव-संवेदनों का उच्छलन कभी गीत रूप में तो कभी नयी कविता शैली में हुआ है। अनेक प्रभावों को आत्मसात् कर कविने अपनी अभिव्यक्ति को एक नयी भंगिमा दी है, फलतः उसकी अभिव्यंजना मौलिक, नवीन और चित्ताकर्षक बन पडी है। गीतात्मा कवि 'तरुण' की रचनाओं मे कहीं लाक्षणिकता है तो कही ध्वन्यर्थ-व्यंजना, कहीं अभिधात्मक सपाटबयानी है तो कहीं तीखा व्यंग्य, कहीं अलंकारों का सहज-प्रसन्न चमत्कार है तो कहीं वक्रता की भंगिमा, कहीं बिम्बविधायिनी कल्पना है तो कहीं प्रतीकात्मक अभिव्यंजना, कहीं मिथकीय संस्पर्श है तो कहीं लोक-चेतना की आदिम प्रवृत्ति, कहीं अभिजात शैली है तो कहीं शैली का अनगढपन भी। कहने का आशय यह कि कवि 'तरुण' के गीतों में अभिव्यंजना के विविध प्रयोग और रुप लक्षित किये जा सकते है। उनमे परंपरा के साथ आधुनिकता और पुरातनता के साथ नवीनता रची-बसी है। गीतात्मा कवि 'तरुण' की रचनाओं में भावुकता, वैचारिकता, दार्शनिकता, रहस्यात्मकता, प्रणयानुभूति, देशानुराग आदि का मणि-कांचन योग है।[31]

कवि तरुण राग, रस और संवेदना के संदर्भ में एक बहुत ही समर्थ विवेचक रहे हैं। उनके गीतों में संवेदना के स्वर सर्वाधिक मुखर रहे हैं। डा. सुधेश ने तरुण के गीतों में संवेदना की सन्निहिति को रेखांकित करते हुए कहा है कि 'तरुणजी के गीतों की मुख्य संवेदना प्रेम एवं सौंदर्य सम्बन्धी है, पर जीवन यथार्थ के अनेक पक्ष उनके गीतों में चित्रित हुए हैं। प्रेम कविता का चिरन्तन विषय है और सौंदर्य प्रेम का अनिवार्य आलम्बन। कवि की सौन्दर्यचेतना जीवनजगत् के उसके निरीक्षण और उसके जीवनानुभवों से प्रेरित एवं अनुशासित होती है। कवि तरुण ने अपने प्रारम्भिक जीवन में जो अभाव और संकट झेले थे और बाद में भी जीवन से उनका जो निकट साक्षात्कार हुआ था, उसने उन्हें मानव के बाह्य सौदर्य के बजाय आन्तरिक सौन्दर्य को देखने की दृष्टि दी। मानव का वास्तविक सौन्दर्य उसके आन्तरिक सौन्दर्य अर्थात् उसके सद्गुणों में निहित है। उसके बाह्य सौन्दर्य, अथवा रूपात्मक सौन्दर्य का प्रासगिक महत्व है। सामान्य लोग रूप को ही सौन्दर्य समझते हैं, पर कवि तरुण रुप के भीतर छिपे सौन्दर्य को देखते ते और वह सद्गुणों की ओर संकेत

करता है। कवि की सौन्दर्य चेतना उसकी प्रेम विषयक अवधारणा को निश्चित करती है। तरुणजी की सौन्दर्य चेतना एक विशिष्ट चेतना थी, जिसमें गहरी मानवीयता, उदात्त जीवनमूल्यों में गहरी निष्ठा और उत्कृष्ट की साधना का आग्रह था। इसी परिप्रेक्ष्य में उनके गीतों में व्यंजित प्रेमभावना को देखना चाहिए।

तरुण की प्रेमभावना एक लम्पट युवक की प्रेमभावना से नितान्त भिन्न है। उनके यौवनकाल में लिखित गीतों से भी एक सच्चे प्रेम का चित्र उभरता है, रुपलोलुप कामुक व्यक्ति का नहीं। प्रौढावस्था और वृद्धावस्था में लिखित उनके गीतों में प्रेम के उदात्तीकरण की प्रवृत्ति बडी साफ दिखाई देती है। सन् १९५५ ई. में लिखित एक गीत की ये पंक्तियाँ देखिये -

लो कवि का मन खोल दिखाऊँ
अन्तर्जग की रंग-बिरंगी निधियाँ लो अनमोल दिखाऊँ।

कवि के मन में 'अन्तर्गत की रंग-बिरंगी निधियाँ' छिपी हैं, जिनकी ओर यहाँ संकेत किया गया है। प्यार, समर्पण, बलिदान, विश्वास आदि ही आन्तरिक जगत् की निधियाँ हैं, जिनका सम्बन्ध कवि के मन से है।

सन् १९५० ई. में लिखित एक अन्य रचना में कवि ने लिखा था -

वह मन क्या है ? मरघट है, जिसमें प्यार न हो,
वे हाथ अपावन जिनमें प्रेमोपहार न हो,
वह क्या प्रेमी जो प्रेमपन्थ-बाधा से डर
प्राणों की भेंट चढाने को तैयार न हो।

प्रेमपात्र के लिए प्राणों की भेंट चढाकर ही प्रेम का प्रमाण दिया जा सकता है। प्रेम के बारे में तरुण की यह अवधारणा है, जो कितनी पवित्र और उदात्त है। आत्मोत्सर्ग ही यह भावना कहाँ से जन्म लेती है ? कहना होगा कि यह अहम् के विसर्जन और प्रेमपात्र की हितकामना से उत्पन्न होती है। सच्चा प्रेन दान देना चाहता है, प्राणों का दान भी। वह प्रतिदान की कामना नहीं करता।

तरुण जी की सौन्दर्यचेतना उन्हें मानवसौन्दर्य-चित्रण के साथ प्राकृतिक सौन्दर्य की ओर भी ले जाती है। वे प्रकृति पर मुग्ध हैं, इसका परिचय बार-बार उनके गीतों के माध्यम से हो जाता है। सन् १९५४ में लिखित उनका एक गीत है **'दूर काले बादलों में।'** उसकी ये पंक्तियाँ देखिये -

दूर काले बादलों में डोलती चिड़िया
मुझे भी साथ लेती जा,
हाय, सावन के पवन में बोलती चिड़िया
मुझे भी साथ लेती जा।

यहाँ काले बादलों के संग डोलती और सावन के पवन के स्वरों के साथ स्वर मिलाती चिडिया का उन्मुक्त गगन में डोलना कवि को आकर्षित कर गया और वह भी प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में चिडिया के साथ विचरण करने की आकांक्षा करने लगा। प्रकृति से एकाकार होने की आकांक्षा, जहाँ प्रकृतिसौन्दर्य पर मुग्ध होने का परिणाम है, वहाँ कवि की प्रेमभावना के विस्तार और विराट प्रकृति से

एकाकार होने की चेतना का भी परिचायक है ।

प्रेम के प्रसंग में संयोग के साथ वियोग की भी सार्थकता है । प्रेम जीवन की ऐसी यात्रा है, जो अनेक सुखद तथा दुखद पड़ावों से गुजरती हुई आगे बढ़ती जाती है । संयोग और वियोग दोनों शाश्वत नहीं हैं । वे जीवन की तरह परिवर्तनशील स्थितियाँ हैं । कवि तरुण प्रेम के बारे में कोई रोमांटिक या भावुक दृष्टिकोण नहीं रखते, बल्कि एक यथार्थचेता कवि की तरह उसके आह्लादक तथा कष्टकर रूपों को समान रुप से स्वीकार करते हैं । जहाँ वे लिखते हैं -

तुम मेरे साथी होते तो जीवन नन्दन-वन हो जाता ।
काँटे हो जाते नील कुसुम,
पथधूल मुझे होती कुंकुम,
मोती होता दृगनीर, पसीना शीतल चन्दन हो जाता ।

वहाँ से वियोगजन्य पीडा का स्वागत करते हुए लिखते हैं -

जिसने पीडा का दान दिया,
नित जलने का वरदान दिया,
कंठों को मीठा गान दिया, उसकी जय हो, उसकी जय हो ।

प्रकृति के मनोरम चित्र उनके गीतों तथा अन्य रचनाओं में बिखरे पडे हैं । **'पुकार'** शीर्षक रचना की ये प्रथम पंक्तियाँ अवलोकनीय हैं -

घुमड़ रहे घन फैला सम्मुख
काला सिन्धु अपार,
उमड रहीं काली तूफानी
लहरें भीमाकार ।

सन् १९४७ में लिखित उनका 'राष्ट्रगीत' जहाँ कवि की राष्ट्रीय भावना का दर्पण है, वहाँ प्राकृतिक सौन्दर्य पर उनके मुग्ध भाव का भी सूचक है । इसका एक अंश देखिए -

उषा छिडक प्रातः नित चन्दन करती है इसका अभिनन्दन,
स्निग्ध पवन में खोल मुकतट पुलकाकुल करते खग गुंजन,
गद्गद हो धोता है इसके पुण्यचरण सागर नित खारा ।
महिमामय है देश हमारा ।

प्रकृति का उपमान रुप में प्रयोग कवि प्रायः करते आये हैं । यह पुरानी परम्परा है । उपमान के साथ प्रकृति का उपयोग कही प्रतीक, बिम्ब, अलंकार के रूप में भी कविता में अक्सर होता है । कवि की मौलिकता इस बात में है कि प्रकृति के उपकरणों का प्रयोग वह कितने नवीन और अप्रचलित ढंग से करता है । इस प्रसंग में तरुण जी ने स्थल-स्थल पर अपनी मौलिक सूझ का परिचय दिया है । उदाहरण के लिए 'मेरा जीवन' शीर्षक गीत लीजिए, जो १९४६ में रचा गया था -

गिरिपथ-सा है मेरा जीवन ।
किन्तु प्यार की धारा निर्मल
वहाँ एक बहती है कलकल
कठिन शिलाखण्डों में टकरा गुंजारित करती-सी कानन ।

यहाँ कवि अपने कठोर जीवन की उपमा *'गिरिपथ'* से देता है, और प्यार की तुलना शिलाखण्डों से टकराकर बहनेवाली निर्मल जलधारा से करता है । *'दूर गगन में टूटा तारा'* शीर्षक गीत में कवि ने तारा टूटने के प्राकृतिक व्यापार को दुखिया के नयनों से टपकते खारे आँसू से उपमित किया -

दूर गिरा वह तारा ऐसे
दुखिया के नयनों से जैसे
याद पुरानी हो आने पर मौन टपकता आँसू खारा ।

ऐसे कितने ही उद्धरण दिये जा सकते है, जिनसे यह स्पष्ट होगा कि तरुणजी की रागात्मकता का एक छोर यदि मानव सौन्दर्य से बँधा था तो दूसरा छोर प्राकृतिक सौन्दर्य से । पर समग्र दृष्टि से देखने पर कहा जा सकता है कि उनकी कविता का केन्द्र मानव सौन्दर्य का अन्वेषण और चित्रण है, प्रकृति का स्वतंत्र चित्रण नहीं । मूलतः वे मानव मूल्यों के गीतकार हैं और उनकी सौन्दर्य चेतना भी अनिवार्यतः मानवीय है । इस प्रकार वे एक मानवतावादी कवि दिखाई देते हैं ।

तरुण निरे रोमांटिक कवि नहीं हैं, बल्कि जीवन-यथार्थ के प्रति अत्यन्त जागरुक और उदार मानवतावादी कवि हैं, इसके प्रमाण उनकी रचनाओं में बिखरे पडे हैं । देश और समाज से जुडे अनेक ज्वलन्त प्रश्न हैं, जिनके उत्तर उनकी कविता देती है । जहाँ कवि मन की गहराइयों मे उतरकर मानव-चेतना के अनेक नए बिन्दुओं को वाणी देता है, वहाँ समाज की अनेक समस्याओं पर भी वह दृष्टिपात करता है । सन् १९४७ ई में लिखित उनका 'राष्ट्रगीत' इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है । इसमें देशप्रेम के उद्‌गार के साथ उच्च मानवीय मूल्यों का समर्थन किया गया है । 'जियो और जीने दो' की मान्यता को कवि ने यों वाणी दी -

सुख से जियो और जीने दो यह उदार भावना यहीं है,
यहाँ आत्मबल पूज्य, किसी का पशुबल में विश्वास नहीं है,
तलवारों से नहीं, जगत् पर पाई विजय हृदय के द्वारा ।
महिमामय है देश हमारा ।।

वैज्ञानिक उन्नति और आधुनिक सभ्यता के बावजूद मानव शोषण और कुण्ठाओं का शिकार है । *'मैं वनवासी होता'* शीर्षक कविता में कवि इस तथाकथि आधुनिक तथा सभ्य दुनिया से दूर जाकर प्रकृति के आँगन में वनवासी के रूप में बनसे की कामना करता है । वह आधुनिक सभ्यता पर व्यंग्य करते हुए लिखता है -

कुसुम-कीट-सा हाय सभ्यता ने मुझको चर डाला,
मन पर जाला, मुख पर ताला और हँसी पर पाला ।।

वह एक सरल, निश्छल दुनिया की कामना करता है । एक गीत में उसने लिखा -

सरल सरल बन, हे मेरे मन !
सरल हृदय को मिल जाता है अनमाँगे ही त्रिभुवन का धन ।

पर दुनिया में सब कुछ सरल ढंग से नहीं मिल जाता । कुछ पाने के लिए कठोर परिश्रम और साधना करनी पड़ती है । कभी अवरोधक शक्तियों से संघर्ष भी करना पड़ता है । एक गीत में कवि ने लिखा :-

वंशी पटक हे धनुर्धर !
जीवन भयंकर है समर,
गांडीव तू अपना उठा
जीवित तुझे रहना अगर
संघर्ष कर आहें न भर ।

'संघर्ष पथ पर' शीर्षक गीत भी संघर्ष की प्रेरणा देता है । इसी प्रकार का एक अन्य गीत ***'संघर्ष कर'*** शीर्षक से है ।

कवि मन अनेक सपने देखता है । वे प्रणय, मिलन, चिरन्तन सुख और सुन्दर संसार के हैं और इनके माध्यम से जहाँ वह अपनी जिजीविषा को वाणी देता है, वहाँ इस संसार को अपनी कल्पना के स्वर्ग में बदले की आकांक्षा भी प्रकट करता है । कवि स्वभाव से स्वप्नदर्शी और कल्पनाप्रिय होता है, पर वह जीवन यथार्थ की गहरी पडताल भी करता रहता है । यथार्थ के गहरे बोध से उनकी कल्पना को पख मिलते हैं । यथार्थ बोध और कल्पना की यह आंखमिचौनी कवि तरुण के गीतों में देखी जा सकती है । एक गीत में उन्होंने लिखा -

जीवन है कुसुमोत्सव
ले दे भावांजलि नव ।

उसी गीत का अन्त इन पङ्क्तियों से होता है -

अणुबम से जलता जग, शीतल उपचार करो,
प्यार करो ।

शुरु में 'कुसुमोत्सव' की कल्पना है अन्त में अणुबम के कठोर यथार्थ का बोध भी है, पर उसमें प्यार का आह्वान है । संसार कितना कुरूप हो जाए, पर कवि उसमें भी सौन्दर्य का अन्वेषण करता है और कुसुमोत्सव मनाने की जिद नहीं छोडता ।

तरुण जी के गीतों में यथार्थ और कल्पना की आँखमिचौनी के बावजूद वे मूलतः प्रेम और सौन्दर्य के कवि हैं, पर प्रेम एवं सौन्दर्य के विविध तथा व्यापक आयाम उनकी रचनाओं में उदघाटित हुए हैं । मेरा अनुमान है कि यदि डॉ. तरुण आलोचना में न फँसते और अबाध गति से गीत साधना हीकरते रहते तो वे एक सर्वश्रेष्ठ गीतकार होते । पर कई विश्वविद्यालयों में प्रोफेसरी करते हुए वे आलोचनात्मक लेखन से कैसे बच सकते थे ? आम धारणा बन गई है कि प्रोफेसर को आलोचक भी होना चाहिए, यद्यपि प्रत्येक आलोचक के लिए प्रोफेसर बनना उसके भाग्य पर निर्भर है । यह भी कहा जा सकता है कि यदि किसी के व्यक्तित्व में इतनी ऊर्जा है कि वह साहित्य की कई विधाओं में अपनी प्रतिभा का उपयोग कर सकता है, तो इसका स्वागत किया जाना चाहिए । तरुण जी का व्यक्तित्व बडा ऊर्जावान था, जिसकी किरणें अनेक दिशाओं में फैलीं । पर यहाँ मैं उनके गीतकार व्यक्तित्व की चर्चा कर रहा हूँ । निस्संदेह उनका व्यक्तित्व गीतमय था । उन्हें

गीतात्मा कवि कहना सर्वथा उचित है ।[32]

कवि तरुण ने कभी प्रत्यक्ष तो कभी परोक्ष रुप से अनपे अन्तर्रांग को व्यक्त किया है । जहाँ वह प्रत्यक्ष है, वहाँ उनका प्रणय भी मानवीय या दैहिक मांसलता से संलग्न है, किंतु जहाँ वह परोक्ष रुप से अपने प्रणयभावों को व्यक्त करते हैं, वहाँ उनका दर्शन, आध्यात्म्य और चिंतन पक्ष मुखर होता है । डा. हरिश्चन्द्र वर्मा इस संदर्भ में विस्तृत विवेचना प्रस्तुत करते हुए कहते हैं -

अनुभूति की तीव्रता ही गीत की गेयता का मूल स्रोत है । यों तो गीत में भी चिन्तन और कल्पना का समावेश रहता है, किन्तु प्रधानता भावावेग या रागतत्व की ही रहती है । यह राग-तत्व (भावावेग) ही गीत में रागात्मक (संगीतात्मक) स्वरों में साकार होता है । इस प्रकार गीत का मूल स्वरुप ही रागात्मक है । गेयता गीत की नैसर्गिक विशेषता है । गीत मानव के दुःखात्मक या सुखात्मक भावावेग की संगीतमयी अभिव्यक्ति है । इसकी सारी शक्ति इसके रागतत्व (भावावेग तथा संगीत) में निहित है ।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात के हिन्दी गीतकारों में डॉ. रामेश्वरलाल खण्डेलवाल 'तरुण' का नाम विशेष गौरव और सम्मान के साथ लिया जाता है । सच तो यह है कि गीतों के अनुभूतिगत और शैल्पिक उत्कर्ष की दृष्टि से वे आधुनिक युग के प्रथम श्रेणी गिने-चुने गीतकारों में परिगणित हैं । डॉ तरुण गीत-रचना में विशेष तृप्ति और आत्म-गौरव का अनुभव करते हैं । वर्तमान वैज्ञानिक भौतिकवादी युग में जिन्दगी बर्फ की चट्टान के समान जडताग्रस्त हो गयी है । इस बर्फ की चट्टान के नीचे दबकर मानव का संगीत दम तोड रहा है । विज्ञान-प्रेरित और बौद्धिकता की प्रधानता के कारण संवेदना के नैसर्गिक स्रोत सूख गये है । इसीलिए कविता पर गद्य हावी होता जा रहा है । रागरहित, गद्यात्मक प्रवाह से सरस गीतों की कैसे रक्षा की जाए यही प्रसिद्ध गीतकार डॉ. तरुण की दुश्चिन्ता का प्रमुख विषय है :-

हो गई है जिन्दगी अब बर्फ की चट्टान -
हाय, दबकर रह गया इसमें मनुज का गान !...
आज मैं कवि, देख-यह कैसा खडा निरुपाय ।
मैं मनुज के गीत को कैसे बचाऊँ हाय ?

आस्तिक और आस्थावादी गीतकार तरुण का विश्वास है कि गीत ही अभिव्यक्ति का वह सहजतम और प्रभावशाली माध्यन है जो छद्म सम्यता की परतों से आच्छादित मानव-मन को अनावृत और मुक्त करके उसे उल्लास और आनन्द के नैसर्गिक स्रोत से सम्पृक्त कर सकता है । 'बसन्त' शीर्षक गीत में कवि की इसी आस्था को वाणी मिली है -

आज गीत के कर-कमलों से,
मानव-मन का है अनावरण ।

अमूल्य भाव-राशि से वैभवशाली अपने लघुकाय गीतों की गुणवत्ता और महत्ता को पूर्ण आत्म-विश्वास के साथ रेखांकित करते हुए डॉ तरुण ने कहा है कि सूर्य-चांद की खरी तुला पर तौलने पर उनके गीत भाव-गरिमा की दृष्टि से स्वर्ग-मुक्ति के समतुल्य सिद्ध होंगे :

गीतमालिकाएँ लो प्यारी -
यों तो हल्की, पर हैं भारी ।
सूर्य-चाँद की खरी तुला पर, स्वर्ग-मुक्ति से तौल दिखाऊँ ।

गीत आत्माभिव्यक्ति की चरम सिद्धि है। गीत में कवि का 'स्व' प्रत्यक्ष रूप में साकार होता है। गीत रचनाकार की मौलिकतम निर्मिति है, जिसमें उसकी निजता अपनी सम्पूर्ण रचनाधर्मिता के साथ सम्मूर्त होती है। इसीलिए गीतकार तरुण अपनी प्राणेश्वरी को विधाता द्वारा निर्मित किसी भौतिक वस्तु की अपेक्षा स्वरचित गीत की अमूल्य, अमर भेंट देने में विशेष तोष और गौरव का अनुभव करते हैं -

किन्तु गीत यह मेरा अपना !
विधि की नहीं - स्वयं की रचना !
भेंट यही अनमोल अमर लो, मेरी प्राणप्रिये कल्याणी !
क्या उपहार तुम्हें दूँ रानी ?

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गीत-रचना के प्रति कवि की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। गीत डॉ. तरुण की आत्मभिव्यक्ति और आत्म-तृप्ति का सर्वाधिक सहज और शक्तिशाली माध्यम है। उन्होंने पीड़ा और उल्लास की मूल अनुभूतियों को अपनी गीत-सृष्टि का स्रोत माना है। **'उसकी जय हो'** तथा **'दान'** शीर्षक गीतों में उन्होंने पीडा को ही अपने गीतों की उत्स-भूमि बतलाया है। **'प्रेरणे, आओ हृदय में'** गीत मे कवि ने अपनी सृजन-प्रेरणा से हृदय मे पीडा, ज्वाला और टीस उपजाने की अभ्यर्थना की है -

आँधियों-सी उठ तनिक सोया हृदय झकझोर जाओ,
कुछ नई पीडा उठाओ, कुछ नई ज्वाला जगाओ,
मधुर मधु की बूँद को तुम, अश्रु दो तुम, आग दो तुम,
प्रेम की मुरली सुनाऊँ, वह अमर अनुराग दो तुम,
फूट निकले गीत ऐसी टीस उपजाओ हृदय में।
प्रेरणे, आओ हृदय में।

दग्ध हृदय से ही गीतों का निर्झर झरता है :-

इस मन को जलता रहने दे,
गीतों का झरना बहने दे।

कुछ स्थलों पर कवि ने उल्लास और उमग को भी अपने गीतों का स्रोत माना है। **'वसन्त-प्रभात'** शीर्षक गीत की निम्नलिखित पंक्तियाँ इस दृष्टि से उल्लेखनीय है -

रोम-रोम कँप उठता सुख से,
कण्ठों में भर आते गायन।

विश्व के अन्य स्वच्छन्दतावादी कवियों की भाँति डॉ. तरुण भी युगीन यथार्थ की विसंगतियों के प्रति समझौतावादी नही है। उनकी रागात्मिका वृत्ति के संचार की दो ही दिशाए हैं - सुन्दर, विराट, भव्य और दिव्य रूपों के प्रति अति अनुरक्ति और भक्ति, तथा विकृत रूपों-व्यापारों के प्रति अति वितृष्णा और विक्षोभ। वे अति तोष और अति रोष के कवि है। तोष प्रवृत्ति और क्रिया का आधार है तथा रोष विरोध और प्रतिक्रिया का। उनकी इसी रोष-तोष मूलक द्वन्द्वात्मक दृष्टि से उनके काव्य की प्रवृत्तियाँ प्रसूत हुई है - (१) युगीन पीड़ा और संत्रास, (२) विसंगति और व्यंग्य, (३) आक्रोश और विद्रोह। उनकी तोषमूलक अथवा प्रवृत्तिपरक दृष्टि से निम्नलिखित प्रवृत्तियों

का उदय हुआ है - (१) जीवनोल्लास, संघर्ष-चेतना और स्वातन्त्र्य भावना, (२) प्रकृति-प्रेम, (३) राष्ट्र, इतिहास तथा संस्कृति के प्रति प्रेम, (४) ईश-प्रेम अथवा भक्ति-भावना, (५) अध्यात्म और रहस्यानुभूति, (६) प्रणय और श्रृंगार-भावना, (७) मूल्य-बोध और मानवतावादी जीवन-दर्शन ।[33]

अन्त में कहा जा सकता है कि कवि रागात्मक उद्‌भावनाऐं उनकी संवेद्य वाणी में मुखर होकर व्यक्त हुई हैं । जिसमें उनका सुकुमार हृदय साक्ष्य के रूप में उपस्थित रहा है ।

प्रकृति

रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' को यदि प्रकृति का उदार कवि कहा जाये तो सर्वदा तर्कसंगत कथ्य होगा। उनके गीतों में प्रकृति के उपकरण के रंग बिखरे पड़े हैं, वैसे भी कवि और प्रकृति का सम्बन्ध बहुत पुराना रहा है। वैदिक साहित्य में पर्वत, नदी वायु, अग्नि, पवन, समुद्र आदि की प्रकारान्तर में स्तुति के बहाने उसकी मन–मोहिनी छवि को भी व्यंजित किया गया है।

मानव और प्रकृति का परस्पर अटूट सम्बन्ध है। प्रकृति–निरपेक्ष मानव–जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। वस्तुतः सम्पूर्ण सृष्टि अनादि, अव्यक्त परब्रह्म के आत्म विस्तार की स्फूरणा का ही परिणाम है। मानव भी इस सृष्टि का एक अंग है और प्रकृति की क्रोड में ही उसका पोषण होता है। मनुष्य जब इस संसार में पहले–पहल अपनी आँख खोलता है तो वह उसी क्षण भी अपने चारों ओर फैले प्राकृतिक परिवेश को कौतुहल की दृष्टि से देखता है। प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों से मानव निरन्तर प्रभावित होता रहता है। प्रकृति का व्यक्ति के साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित है।

हिन्दी–कविता में प्रकृति–प्रेम की व्यंजना की दृष्टि के कवि 'तरुण' का काव्य अपना विशेष स्थान रखता है। उनके काव्य को देखने से लगता है कि कवि प्रकृति का अत्यन्त–प्रेमी रहा है। उनकी अधिकांश कविताओं मे उनका यह प्रकृति–प्रेम पूरी व्यंजकता के साथ साकार हुआ है।

कविवर 'तरुण' के तीन काव्य–संग्रहो –'प्रथम किरण', 'हिमांचला' तथा 'ऑधी और चॉदनी' के शीर्षक प्रकृति से ही लिए गये हैं। कवि की पुरातन और नूतन–समस्त काव्य–रश्मियों की समवेत प्रस्तुति के रूप में प्रकाशित 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' के उत्तर–खण्ड मे दिये गये शीर्षक 'सौधे ऑगन : पॉव की छापे', 'दुपहरिया के फूल' तथा 'पहाडी साध्य रागिनी' – भी प्रकृति पर ही आधारित इसी खण्ड में कवि की मुक्तक रचनाओ को जो शीर्षक दिया गया है– 'मुक्तक · हरी दूब –बिखरे, लुढ़के, ओसकण' वह भी प्रकृति से ही लिए गए है। इनके एक गद्य–ग्रन्थ –'सूरज–डूबते की बदलियॉ' (सन् 1984 मे प्रकाशित) का शीर्षक भी प्रकृति पर ही आधारित है। कवि ने 'कविता मे प्रकृति–चित्रण' शीर्षक से एक लघु शोध–ग्रन्थ का भी प्रणयन किया है। ग्रन्थों के इस प्रकार सांकेतिक शीर्षक–निर्धारण के मूल मे कवि का प्रकृति के प्रति आकर्षण और प्रेम सहज ही परिलक्षित होता है। खम्भात की खाडी की ओर से उमडते–घुमडते बादलों को देखकर कवि कह उठता है कि वे धरा को गले लगाने आ गये है–

"गदबदे–गदबदे सॉंवरे–सॉंवरे
आ गये बादरे!
केश बिखरे हुए, आँख अंजन–अंजी,
बीजुरी–दोलड़ा स्वर्ण–कण्ठी सनी,
रूपवती किसी गोरटी की मदिर–
मस्त–माते नयन में सजल याद ले,
आ गये बादरे।
छमछमाते चरण में ठुमक मणिपुरी,
लंक में है लचक, ओठ पर बाँसुरी;
झाँवरी–झाँवरी, दूबरी–दूबरी–
आ गये हैं, धरा के लगाने गले।

आ गये बादरे!" [1]

कवि ने प्रकृति को अपनी काव्यभिव्यक्ति का एक प्रमुख सशक्त माध्यम बनाया है। या यों भी कहा जा सकता है कि प्रकृति ही कवि की भावभिव्यक्ति की मूल, प्रथम और मुख्य प्रेरिका रही है। प्रकृति का व्यापक परिवेश– पर्वत, मरुस्थल, मैदान, समुद्र, पठार, झीलें, नदियाँ, घाटियॉं, झरने, नभ, सूर्य, चन्द्र, तारे, मेघ, भूकम्प, तड़ित, वन–उपवन, पेड़–पौधे, वनस्पतियाँ, खेत–खलिहान, पशु–पक्षी, वर्षा, पवन, ऑंधियॉं, धूप, चॉंदनी, ॲंधेरा, ऋतुएँ, आकाश–गगा, नक्षत्र, इन्द्रधनुष, सन्ध्या, ऊषा, दोपहर, रात्रि और गोधूलि आदि–सब कवि की अभिव्यक्ति के विषय या माध्यम रहे है। इसके अतिरिक्त, प्रकृति के अत्यन्त सूक्ष्म–निरीक्षण से विभिन्न प्रकार के रंगों तथा छायाओं और मिश्रित रंगों एवं उनके भेद–प्रभेदों, विभिन्न प्रकार की ध्वनियों–स्पन्दनों, भिन्न–भिन्न प्रकार की गन्धों–सुगन्धों तथा स्पर्श की विभिन्न अनुभूतियों आदि की संवेदनशील अभिव्यंजना उसकी रचनाओं में हुई है। प्रकृति का उद्दीपन और मानवीकरण के रूप में चित्रण भी 'तरुण' के काव्य में खूब देखा जा सकता है। विभिन्न प्रकार के अलंकारों, बिम्बो, प्रतीकों तथा उपमानों के रूप में भी प्रकृति का अप्रत्यक्ष प्रयोग किया गया है। कवि ने रहस्यमयी सत्ता की अभिव्यक्ति, उपदेशात्मकता तथा पृष्ठभूमि और वातावरण की सृष्टि के लिए भी प्रकृति का खुलकर प्रयोग किया गया है। 'तरुण' ने सूर्य के माध्यम से आत्मिक और आध्यात्मिक चिन्तन की विवृत्ति की है। वह इस संसार को कंचन बनाना चाहता है–

"मैं लौटूँगा जीवन–नभ से
रवि की अन्तिम स्वर्ण किरण–सा–
जो मिटने से पूर्व जगत का
कण–कण कर देती कंचन–सा।" [2]

डॉ0 शान्ति स्वरूप गुप्त के अनुसार, *"यद्यपि 'तरुण' का जन्म सुमित्रानन्दन पंत की भाँति प्रकृति की रम्य क्रोड़ में न होकर मीरा की उस रूक्ष मरुभूमि में हुआ, जहाँ प्रकृति का भयावह, विकराल रूप ही प्रायः देखने को मिलता है, तथापित बचपन से ही उन्हें प्रकृति के निकट सम्पर्क में आने का अवसर मिला। बड़े भाई के साथ प्रवास से रेल की किसी चौकी पर आधी रात के समय आँख खुल जाती, तो किशोर कवि कभी सिर के ऊपर से गुजरते अंधड़ का रौद्र रूप देख सिहर उठता और कभी दुग्ध–धवल चांदनी में डूबी मरुभूमि के सौन्दर्य के निहार मन्त्र–मुग्ध हो जाता। इस प्रकार बचपन से ही उसने प्रकृति के विभिन्न रूपों – भयानक और कोमल, उदास और प्रफुल्ल, शीतल और दाहक, भव्य और दिव्य, स्निग्ध और मृसण, मन को मुग्ध करने वाले और आंतकित करने वाले रूपों को देखा है। इसलिए उनके काव्य में प्रकृति के सभी रूप देखने को मिलते हैं। हाँ, स्वभाव से सौन्दर्य–प्रिय, कोमल और भावुक होने के कारण उनका मन प्रकृति के रम्य एवं कोमल रूप में ही अधिक रमा है। प्रकृति 'तरुण' के लिए एक खुला ग्रन्थ है, जिसका परिशीलन उन्होंने बड़े निकट से पूरी आस्था और तन्मयता के साथ किया है। इसलिए उनके प्रकृति–चित्र सुने–सुनाए न होकर प्रत्यक्ष आँख खोलकर उरेहे गये चित्र हैं। प्रकृति का सूक्ष्म–से–सूक्ष्म क्रिया–कम्पन उनके हृदय में पुलक और प्राणों में स्पन्दन भर देता है और वह प्रकृति के अन्तस् में प्रवेश कर उसकी सम्पूर्ण सौन्दर्य–छवियों को उद्घाटित करने लगते हैं। उनके समस्त रंगों, ध्वनियों, छायाओं और मनोभावों का चित्रण कवि द्वारा सफलतापूर्वक किए जाने के पीछे यही रहस्य है।"* [34]

"रचनाओं में विचार तथा आत्मा का मधुर सामंजस्य मन को आकर्षित करता है। प्रकृति

---

1 ऑंधी और चॉंदनी' 'बादरे', पृष्ठ 130
2 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'उदय और अस्त', पृष्ठ 162

सम्बन्धी कविताओं में कवि का सौन्दर्य–बोध विशेष रूप से निखर उठा हैं। वह प्रकृति के निकटतम सम्पर्क में आया है, इसमें सन्देह नहीं। उसके सूक्ष्म निरीक्षण में कवि हृदय का भावना विलास धूप–छाँह की तरह घुल–मिल गया है। प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण करने तथा नैसर्गिक वातावरण की अवधारणा करने में कवि को अत्यन्त सफलता मिली है। प्रकृति के मुख पर उसे अलौकिक तथा शाश्वत सौन्दर्य के दर्शन मिलते हैं।"[35] पंत जी ने 'प्रथम किरण' के प्रकाशन के समय उनकी जो प्रशसा की थी वह आज भी सत्य है।

'तरुण' की प्रथम कविता– 'पीपल में जल'– सन् 1930 में लिखी गई थी जो प्रकृति से ही प्रारम्भ होती है। प्रकृति तो मानों कवि की अभिव्यक्ति की मूल भाषा ही है–

"राजा जी की रानी चली, पीपली के नीचे
वहाँ रानी जाकर क्या करे कि पीपल में जल सींचे।
दिन था वह गणगौर का चली चहेली साथ।
हँसती गाती जा रही, जल की मटकी हाथ।"[1]

कवि की प्रथम काव्य–कृति – 'प्रथम किरण' की 'प्रकृति की गोद में' शीर्षक लम्बी कविता में गंगा के हरे–भरे मैदान में फैले व्यापक प्राकृतिक परिवेश को अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से पूर्ण रागात्मकता के साथ जी भरकर देखा है। वह प्रारम्भ से ही प्रकृति प्रेमी रहा है। यात्रा–भ्रमणादि में भी कवि अपने साथ प्रकृति के सुविख्यात पाश्चात्य कवि वर्डसवर्थ का कविता–सग्रह रखता था–

"कन्धे पर मेरे लटक रहे झोले में
था वर्डस्वर्थ का कविता संग्रह रसमय।"[2]

कवि 'तरुण' ने 1930 मे कविता लिखना प्रारम्भ किया था और उस वक्त कविता मे छायावाद के नाम से एक सशक्त आन्दोलन का वर्चस्व था। छायावादी काव्य की एक प्रमुख प्रवृति रही है– प्रकृति–प्रेम। और इस समय के लगभग सभी कवि प्रकृति के विशेष प्रेमी रहे।

एक बात और, कि कवि के इस आयुचरण मे उसका परिवेश भी प्रकृतिमय ही अधिक रहा। बाल्यकाल में कवि अपने गॉव–भीलवाडा और किशोरावस्था मे इन्दौर तथा पिलानी के प्राकृतिक परिवेश की मनोरम छटा एव तत्पश्चात् यौवनकाल मे गगा के हरे–भरे मैदान और काशी–मेरठ के साहित्यिक–सास्कृतिक वैभव ने कवि के रससिद्ध हृदय को विशेष रूप से प्रभावित और प्रफुल्लित किया। प्रभातकालीन लालिमापूर्ण दृश्यो को देखकर कवि भाव–विभोर हो उठता है। अरुणोदय की लालिमा उसे ऐसी मालूम होती है मानो नव–माणिक सरीखी मादक मदिरा की प्याली ही प्राची मे छलक पडी हो–

"फूट गई ऊषा की लाली!
लो, प्राची में छलक पड़ी है नव मणिक–मदिरा की प्याली,
फूट गई ऊषा की लाली।"[3]

अरुणोदय के प्राकृतिक दृश्य का ऐसा मनोहारी चित्र उतारने के साथ कवि का प्रकृति के माध्यम से जीवन के प्रति विराट् दृष्टिकोण तथा प्रकृति के प्रति कृतज्ञता–भाव स्पष्टत दृष्टिगोचर होता है–

"जिसने स्वर्ण–विहान किया है,
एक और दिन दान दिया है,

---

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'पीपल मे जल', पृष्ठ 331
2 वही, 'प्रकृति की गोद में', पृष्ठ 172
3 वही, 'प्रभात', पृष्ठ 197

निखिल चराचर का वह स्वामी है रे कितना वैभवशाली!

फूट गई ऊषा की लाली!" [1]

कवि–हृदय प्रकृति–प्रेम की उत्ताल तरंगो से ओत–प्रोत है। कवि चाहता है कि वह पक्षी बनकर उन गंगा–कूलों तक उड जाये जिससे उन मनोहारी दृश्यो को देखकर उसका मन स्वस्थ हो सके–

"जी करता है, उन कूलों तक पक्षी–सा उड़ जाऊँ,

देख–देख वह स्वर्गिक शोभा मन को स्वस्थ बनाऊँ!" [2]

प्राकृतिक परिवेश का ऐसा सूक्ष्म निरीक्षण और उसके विभिन्न दृश्यो की स्मृति से उसके मन में उठी आनन्द के अभाव की कसक 'तरुण' के प्रगाढ प्रकृति प्रेम की परिचायक है।

'अनुभूति' कविता मे कवि प्रकृति के विराट स्वरूप, उसके अनन्त विस्तार तथा निर्विघ्न एव अनवरत संचालन क्रम को देखकर उस असीम सत्ता के प्रति नतमस्तक हो उठता है–

"जिसकी एक मधुरतम स्मिति से
ज्योति–स्रोत स्वर्णिल अरुणोदय–
फूट–फूट कर रहे प्रकाशित
जिस अनन्त सत्ता का निश्चय–
जो इस भूमण्डल को निशि–दिन
देता है आलोक चिरन्तन,
उस ज्योतिर्मय के प्रकाश का–
मैं दरिद्र कब करता याचन!
चिर दरिद्र है रे, यह जीवन!" [3]

वसन्त–ऋतु का प्रभात–कालीन दृश्य कवि के मन में इतने उल्लास और उत्साह का संचार कर देता है कि वह आत्म–स्वातन्त्र्य की भावना से ओत–प्रोत हो उठता है। ऐसे आनन्द, उल्लास, मधु, प्रकाश और सुषमा के सागर के स्रोतों तथा ज्योति–निर्झरों को देखने के लिए कवि अत्यन्त व्यग्र हो उठता है–

"चलो, उड़ चलें, दूर क्षितिज पर–
जहाँ ज्योति के बहते निर्झर,
जिनकी लहरों में धुल–धुल कर
हो जावे निर्मल, काया रे!
नव प्रभात आया, आया रे!" [4]

'सावन' शीर्षक कविता में तो सावन मास का पूरा का पूरा वातावरण ही साकार हो प्रस्तुत कर देता है–

"प्राणों में उल्लास भर गया, नदियों में जल उमडाया,
रिमझिम–रिमझिम बरस रहा जल, हरा–भरा सावन आया।" [5]

---

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'प्रभात', पृष्ठ 197
2 वही, 'गगा तट के स्वप्न', पृष्ठ 199
3 वही, 'अनुभूति', पृष्ठ 258
4 वही, 'वसन्त प्रभात', पृष्ठ 192
5 वही, 'सावन', पृष्ठ 184

शैल तटी की हरी घास की सरलता, कोमलता, सरसता और निश्छलता से कवि इतना सवेदनशील हो उठता है कि उसके सामने ही जीवन–रस से अपने मन का विकास करने वाली हरी घास अपने ही सौरभ से खुल–खुल कर उजले हिमकणो से धुल–धुल कर जो अपना जीवन हरा–भरा रखती है– वह अनुकरणीय है–

"ए शैल तटी की हरी घास!
तू कोमल–कोमल, तरल–तरल,
तू मधुर–मधुर, शीतल, निर्मल,
सुन्दर है तुझसे ही भूतल
तू बता कहाँ से पाती है इतना जीवन–रस, मधुर हास।" [1]

हिमालय के सामने पाताल–सी गहराइयॉ, उनमे से क्रमश उभरती हुई देवदारु के पेडों की घनी कतारें, ऊपर भूरे–कत्थई रग की शैल–श्रेणियॉ तथा उन पर सिलहटी–नीली शैल–श्रेणियों की सीमान्त तट–रेखाऍ, उनके ऊपर चमकीले विराट् गोल–सुडौल उलटे लटके हुए कटोरे–से नीले आकाश तथा उसमे झीनी–श्वेत मेघ–जालियॉ, लुढ़के हुए दूध–सी दिखाई देने वाली चॉदी–सी बर्फ आदि में हिमालय पर्वत का रोमाचकारी चित्रण कवि की 'हिमालय के प्रथम दर्शन' शीर्षक कविता में हुआ है–

"देवदारु के पेड़ों की घनी कतारें–
दृष्टि के विस्तार–जैसी लम्बी;
फिर, ऊपर भूरे–कत्थई रंग की उभरती शैल–श्रेणियाँ,
फिर सिलहटी–नीली शैल–श्रेणियों की सीमान्त तट–रेखाएँ,
और सब से परे, आगे, ऊपर–
गिरिराज के अधरों को हल्की–गाढ़ी हँसी–
बर्फीली, शुभ्रोज्ज्वल!" [2]

कन्याकुमारी का लहराता–गहराता समुद्र तो कवि को प्राण की सौ–सौ उछालों की पटलियों से तरंगित, नील–जरतारी रेशमी लहँगा पहन कर ठुमक–ठुमक कर नाचती कन्या प्रतीत होता है–

"प्राणों की सौ–सौ उछालों की पटलियों से तरंगित–
नील–जरतारी पहन कर रेशमी लहँगा
ठुमक कर नाचती यह सिन्धु–कन्या
इस विजन में!
साँस में है अमर नील विषाद,
चरण में है मधुर किंकिणि–नाद;
चल रहे हैं वन्दना के स्वर सुगन्धित;
भुज–लताएँ मृदुलतम लहरा रही हैं।" [3]

मद्रास में प्रथम बार समुद्र का दर्शन करने पर कवि विस्मय–विमुग्ध होकर रहस्यात्मक अभिव्यक्ति के द्वारा उसके श्याम–नील, गर्जनकारी, चंचल, दिगन्त–व्यापी रौद्र–रूप का चित्रण करता है–

"तुम कौन? कहो, हे महिमामय! लेकर अशान्त–सा अन्तराल–

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'हरी घास', पृष्ठ 180
2 'ऑधी और चॉदनी' 'हिमालय के प्रथम दर्शन', पृष्ठ 32
3 वही, 'कन्याकुमारी का समुद्र', पृष्ठ 33

बन हृदय प्रकृति के धड़क रहे इस अन्तरिक्ष नीचे विशाल!
मानव–उर के क्रन्दन, ज्वाला, पीड़ा, आघातों के अनूप–
युग–युग संचित, हे सिन्धु कहो, क्या तुम हो पुंजीभूत रूप?" [1]

'कश्मीर की घाटी' तो सचमुच भू–स्वर्ग ही है। हरे–भरे घास के मैदान, जाफरानी धूप में फूलों की मालाओं से अलकृत हैं। मनोहर मखमल–सा गुलमर्ग, पहलगाम का झरना, नीलम झील टनमर्ग और सोनमर्ग– सब हरी–भरी घाटी के हरितांचल में सुरम्य तथा मनोहारी लगते है। उसके चारों ओर गिरि–मालाओ का चित्रण तो देखते ही बनता है–

"पहने नील जरी की जाली,
मृदु–सुकुमार पटलियों वाली,
रूप–उनींदी गिरिमालाएँ–
लेटी–सम्मुख दाएँ, बाएँ।" [2]

कविवर 'तरुण' ने प्रकृति के रुखे, बैडोल, भदेस और कठोर स्वरूप को भी सौन्दर्यपूर्ण दृष्टि से देखकर अपने काव्य में अभिव्यक्ति के एक उपादान के रूप मे ग्रहण करके उसके द्वारा सौन्दर्य की सृष्टि की है। इस दृष्टि से सर्वप्रथम उनकी 'मरु की रेत' शीर्षक कविता उल्लेखनीय है। घोर मरुस्थल की शुष्क, तप्त, निष्प्राण, वीरान तथा उपेक्षणीय रेत को कवि ने रेशमी, निर्मल बालू रेत कहकर उसमे निहित प्राकृतिक सौन्दर्य को उजागर किया है। यह रेत उसे नवल काजल–सी महीन और सुकुमार दिखाई देती है–

"रेशमी, निर्मल बालू रेत!
अतल मरु के विस्तृत पट पर
नवल काजल–महीन–सुकुमार,
आज क्यों यह गहरी चुप्पी!
हृदय में कौन रुँधे उद्गार!" [3]

इसी प्रकार 'मरु का चन्द्रोदय' नामक कविता भी विशेष दृष्टव्य है। दिन भर मरुस्थल, अत्याचारी शासक के आतंक की भॉति प्रचण्ड सूर्यातप से धधक रहा था–उसकी ज्वाला मे भूतल जल रहा था–

"दिन भर से धधक रहा था सूर्यातप से भूमण्डल,
तीखीं किरणें अम्बर से बरसाती थी दावानल,
आतंक फैलाता जैसे अत्याचारी शासक का–
इस मरु–अठनी पर फैला अति चण्ड तेज सूरज का!" [4]

'गॉव की ओर' शीर्षक कविता में ग्रामीण जीवन और उसके विभिन्न क्रियाकलापों तथा गॉव के प्राकृतिक परिवेश का बडी सूक्ष्मता के साथ रूपायन हुआ है। प्रकृति शोषितो के दुखों के साथ चन्द्रमा को जोडकर देखने से कवि के प्रकृति–प्रेम की विराट चेतना का परिचय मिलता है–

"अन्यायों की इस धरती का
अवलोकन करने यह हिमकर–
शोषित दुखियों पर बरसाने

---

1 तरुण–काव्य ग्रन्थावली' शक्ति का सोन्दर्य–स्वप्न, पृष्ठ 202–203
2 ऑधी ओर चॉदनी' 'कश्मीर की घाटी मे, पृष्ठ 129
3 तरुण–काव्य ग्रन्थावली 'मरु की रेत, पृष्ठ 339
4 वही, 'मरु का चन्द्रोदय', पृष्ठ 196

आया निज करुणा का सागर!" [1]

'पावस–श्री' शीर्षक कविता में मरुस्थल के नीरस और छायाहीन कॉटेदार वृक्षो– जैसे जाठँ, कीकर, हिगोट, गोखरू तथा करील की झाडियो और उन पर बैठे नीलकण्ठ पक्षी का चित्रण भी हुआ है। ढलते हुए सूर्य का दर्शन कवि के हृदय को अत्यन्त उल्लास से भर देता है। इसी सन्दर्भ मे कवि–कल्पना की विराटता का चित्र कितना मोहक है–

"पश्चिम दिगन्त में, संध्या के
ढलते रवि की आलोक भरी–
किरणें, घन का आलिंगन ले
कर रही उन्हें हैं सिन्दूरी।" [2]

'अभिलाषा' शीर्षक कविता में कवि ने अपने मन के सुख का घर–घर में आत्मविस्तार पाने की इच्छा को अभिव्यक्ति देने के लिए जल–तरंग और चन्द्र–कौमुदी आदि उपमानों का भी प्रयोग किया है–

"मेरे मन का सुख असीम यह फैले इस धरती पर घर–घर!
'जल तरंग उठ फैल उमड़ती, सरिता के विस्तृत समतल पर,
वेणु–रन्ध्र से फूल फैलाता निखिल गगन में मंजुलतम स्वर,
आत्म–प्रकाशन कर व्यापक सब होते हैं दिन–रात निरन्तर;
–पहुँच–पहुँच मानव–प्राणों तक मेरा सुख भी हो अजरामर!" [3]

मरुस्थल की निर्जन, बीहड कटकित–जीर्ण झाडी पर सूर्य की लाली में दो चिडियों को कटुशीत तथा बर्फानी वायु मे परस्पर चुम्बनलीन देखकर कवि मुग्ध तो हो जाता है, किन्तु शीघ्र ही उसे अपने यथार्थ जीवन और समाज में इस प्रकार के निश्छल प्रेम की न्यूनता का आभास हो उठता है और वह उन पक्षियो से संसार मे जाकर ऐसे निश्छल प्रेम का दिव्य सन्देश सुना देने का अनुरोध करने लगता है–

"हिंसक जग में जाकर तुम
यह प्रेम दिखाओ, पंछी,
स्वर्गीय प्रेम का मंजुल–
सन्देश सुनाओ, पंछी।" [4]

'एकान्त क्षणों में' शीर्षक कविता मे भी कवि के प्रकृति–प्रेम का अच्छा परिचय मिलता है। रात्रि में झींगुर के स्वर को सुनते–सुनते तथा शशि को देखते–देखते उसके हृदय की धड़कन ही रुक जाती है। यह प्रकृति पर मोहित होने की पराकाष्ठा नहीं तो और क्या है–

"जी करता है आज, कि मुझको अन्धकार हर ले आकर,
स्नेह–सिक्त दीपक की ज्यों अवशिष्ट शिखा को महातिमिर!
इस निस्तब्ध निशा में स–करुण झींगुर–रव सुनता–सुनता,
रुक जाऊँ, धड़कन रुक जावें, टिके रहे लोचन शशि पर।" [5]

'गॉव की सॉझ' शीर्षक कविता मे प्रकृति के अंचल मे बसे हुए गॉव की सायकालीन गतिविधियों का बडा ही रोचक

---

1 तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'गॉव की ओर', पृष्ठ 216
2 वही, 'पावस श्री', पृष्ठ 188
3 वही, 'अभिलाषा', पृष्ठ 254
4 वही 'दो चिडियॉ', पृष्ठ 99
5 वही, 'एकान्त क्षणो मे, पृष्ठ 147

और सजीव चित्रण हुआ है। कच्चे फल खाकर दिन भर खेलते हुए अर्धनग्न बच्चों का अपनी झोपड़ियो में लौटना, अमरूदों और बेरों के कुंजों में पक्षियों का कलरव, हरी क्यारियों से धनिए की मनोहर गन्ध इत्यादि कवि के प्रेम को ही रेखांकित करते हैं–

"आमों के कुंजों में ढलते सिन्दूरी सूरज की लाली,
गेहूँ के श्यामल खेतों पर फैल गई नव शोभाशाली।
मन्द–मन्द बह रहा उनींदा–सा सायंकालीन समीरण,
मीठी सांध्य–शान्ति में सारा ग्राम–प्रान्त डूबा मनमोहन।" [1]

डॉ0 हरिवशराय बच्चन ने तो ***'तरुण' की इस प्रकार की प्रकृति–सम्बन्धी एवं कविताओं से प्रभावित होकर कहा है– "साधारण से साधारण दृश्यों एवं घटनाओं को अपनी पैनी आँखों से देख उसे अपने हृदय की भावना से इस प्रकार रंजित कर देते हैं कि उनकी रचनाओं को देख सहसा वर्ड्सवर्थ की यह पंक्ति याद आ जाती है– The light that was never on sea or land. इसमें सन्देह नहीं कि इस शैली के वे एकमात्र कवि हैं। मेरे पास एक लाख रुपये होते तो उन्हें देकर कहता– जाओ विश्व–भ्रमण करो, और जहाँ जो तुम्हें सजीव, सुन्दर दिखाई पड़े उसे वाणी दो। . . . "*** [36]

कवि 'तरुण' के 'हिमॉचला' नामक काव्य–सग्रह में (जो सन् 1952 में छपा था) मे उनका प्रकृति–प्रेम किंचित् सूक्ष्म होकर शरीर मे रक्त की भॉति अनेक कविताओ में सचरित हुआ है। प्राकृतिक वैभव और उल्लास को विभिन्न आयामी परिवेशगत सन्दर्भो के परिप्रेक्ष्य मे देखने और उस अनुभूति की प्रौढ चिन्तन तथा जीवन–दर्शन के साथ समन्वित, संश्लिष्ट और प्रांजल अभिव्यक्ति के फलस्वरूप प्रकृति के उदात फलक को लेकर अनेक विराट् बिम्ब 'तरुण' के काव्य में देखने को मिलते हैं–

"उधर, अस्त हो गया दिवाकर,
इधर, प्रकट हो रहा चन्द्रमा
ज्यों, जग–शिशु को पिला एक स्तन–
खोल रही दूसरा, प्रकृति–माँ।" [2]

प्रकृति को सम्पूर्ण ससार की मॉ के रूप मे देखने की यह दृष्टि कवि के प्रकृति के प्रति विशिष्ट प्रेम के कारण ही वन पाई है। नि.सन्देह प्रकृति जग का पोषण एक मॉ की भॉति ही तो कर रही है। इसी प्रकार का एक उदात् और विराट बिम्ब उसी कविता में आगे मिलता है–

"धवल चाँदनी का कोमलतम–
अपना आँचल डाल रुपहला–
सुला रही चिर–पीड़ित जग को,
स्नेहमयी रजनी–हिमांचला।" [3]

प्रकृति को देखने की यह मौलिक एवं नवीन दृष्टि कवि के हृदय में उसके प्रति अपार श्रद्धा और प्रेम को ही रेखाकित करती है। वस्तुत: प्रकृति ही जीवन का आधार है। इसके बिना धरती पर जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। 'प्रकृति: जीवन का आधार' कविता में मानव–जीवन के लिए प्रकृति की उपयोगिता और उसका प्रदेय कवि ने सरल भाषा में स्पष्ट किया है। यदि पृथ्वी पर हरी दूब, विहगो का गुजार, हरी घास में मुसकाती उषा का सौन्दर्य, सावन की सुहावनी बौछारें, झरनों के कल–कल गान,

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'गॉव की सॉझ', पृष्ठ 216
2 वही, 'हिमाचला', पृष्ठ 169
3 वही, 'हिमाचला', पृष्ठ 169

कोकिल की मधुर सुरीली तानें, मधुऋतु आदि न होते तो निश्चय ही धरती मरघट के समान होती–

"यदि धरती पर दूब न होती, विहगों का गुंजार न होता,
हरी घाटियों में मुसकाती ऊषा का शृंगार न होता,
सावन की बौछार न होती, झरनों के कल गान न होते,
यह कोकिल की तान न होती, मधु–ऋतु का त्यौहार न होता,
तो हम जीवन–रस के प्यासे इस मरघट में कैसे जीते।
दो पल बैठ कहीं हम सुख से, यह उघड़ा उर कैसे सीते!" [1]

कवि ने 'लो, निशा अब जा रही है' शीर्षक कविता में रात्रि के अवसान को विमुग्ध नयनों से देखकर रोमांचित तन–मन से चित्रित किया है। प्रथम मधुनिशि मे लज्जा से अपना चन्द्रमुख पट मे छिपाती हुई लाजवन्ती कुलवधु की भॉति उषा मुसकाती हुई आ रही है–

"लो, निशा अब जा रही है।
प्रथम मधु–निशि में लजाती,
चन्द्र–मुख पट में छिपाती–
लाजवन्ती कुलवधू–सी नव उषा मुसका रही है।
'लो, निशा अब जा रही है।" [2]

'गेदा के फूलो' मे कवि को कौतुकी बालको का अट्टहास दबा मालूम होता है। उसे ये अधखिले फूल बालकों से कम प्यारे नही लगते। प्रकृति के मानवीकरण का कितना सुन्दर चित्र है–

"जो अभी अधखिले–लगते वे
कौतुकी बालकों के समान,
निज अट्टहास को दबा खड़े,
जो मुख में, – बन भोले अजान!" [3]

चन्द्रमा को देखकर तो कवि को नन्हें बालक की चपलता, उसकी मॉसलता, कोमलता, उसकी तुतलाती बोली की 'त्यॉं–त्यां' साकार दिख पड़ती है। यह चित्र कितना मनोहारी और स्वाभाविक बन गया है–

"देखो पूनों का चॉंद नवल,
कितना शीतल, कितना उज्ज्वल!
नीलम के ऑंगन में शोभित,
जैसे चॉंदी का थाल धवल!
पीपल–तरुओं से निकल रहा–
यह चॉंद मधुर ऐसा लगता–
शिशु, मॉं के कन्धे पीछे–से–
प्रकटा हो ज्यों–करता 'त्यां–त्यां'!" [4]

'चिडियॉं' शीर्षक कविता में अरुणोदय की लालिमा में नव उल्लास से पुलकाकुल चिड़ियों के दल को खेलते देखकर

---

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'प्रकृति जीवन का आधार', पृष्ठ 169
2 वही, 'लो, निशा अब जा रही है', पृष्ठ 210
3 वही, 'गेंदा के फूल', पृष्ठ 176
4 वही, 'पूनो का चॉंद', पृष्ठ 193

कवि मुग्ध–भाव से देखता ही रह जाता है। उनके उल्लास, उनकी थिरकन और कम्पन, सगीत भरे स्वर को देखकर उसे रोमांच हो उठता है। चिडियो के दल की एक–एक स्पन्दन के सूक्ष्म निरीक्षण का चित्रण देखकर कवि की प्रकृति के निरीक्षण की शक्ति पर आश्चर्य होता है–

"कोई नीचे दाना चुगती,
चोंच गड़ाती, भूमि कुतरती,
और परस्पर मुख–चुम्बन कर,
तन में पुलक–प्रकम्पन भरती,
रोमिल कोमल अंगों में निज चोंच गुदाती स्नेह–विकल!
खेल रही चिड़ियाँ चंचल!" [1]

इसी प्रकार 'जिज्ञासा' शीर्षक कविता में भी कवि उस ज्योति–सिन्धु की निराली झलक देखने के लिए लालायित है जिसकी लहरें छलक–छलक कर प्रतिदिन उषा की लाली के रूप में तथा प्रकृति के अन्य उपादानों में जो स्पष्ट झलक कर उसे चिर–सुन्दर और चिर–नवीन बनाये रखती है–

"पर, उस चेतन सागर का रे, मिल पाया मुझको न किनारा।
मैं चिर–सुख से व्याकुल होकर गीत मधुर गा उठता शत–शत–
प्रथम किरण के स्वर्ण–बाण से जैसे बाल–विहग ममहित!" [2]

इस दृष्टि से 'तरुण' की अन्य कविताएँ जैसे–, 'परिचय', 'यह चाँद जिधर से आता है', 'न जाने कौन जन्म की बात', 'चिन्तन', 'अनुभूति', 'खोज', 'मेरा अस्तित्व', 'शक्ति का सौन्दर्य–स्वप्न' आदि उल्लेखनीय हैं, जिनमे प्रकृति के माध्यम से रहस्यात्मक सत्ता के प्रति कवि की सजगता और जिज्ञासा का परिचय मिलता है।

कवि के 'आँधी और चाँदनी' शीर्षक कविता–संग्रह में कवि का प्रकृति–प्रेम व्यंजनात्मक रूप में ही अधिक मिलता है। यह काव्य–कृति सन् 1975 में प्रकाशित हुई थी। जीवन और समाज की विसंगतियाँ, उसके विरोधाभास, विद्रूपताएँ, मोहभंग और प्रगति के नाम पर उसके भीतर का खालीपन इत्यादि प्रतीकात्मक ढग से इस संग्रह की कविताओं मे मुखरित हुआ है। प्रकृति में अब उसे उल्लास और आनन्द ही दिखाई नहीं देता अपितु उसके प्रत्येक आयाम में व्यक्ति एवं सामाजिक जीवन की विडम्बनाएँ–विसंगतियाँ भी दृष्टिगोचर होती हैं। काव्य–चेतना के इस विकास–क्रम के प्रति कवि सजग हैं। अपनी काव्य–यात्रा के विकास क्रम के इस मोड पर आकर कवि ने जो पगडण्डी पकडी है – उसकी घोषणा प्रकृति के माध्यम से ही प्रस्तुत करता है। 'घोषणा' शीर्षक कविता मे प्रकृति के इन प्रतीको का प्रयोग अत्यन्त सूक्ष्म और सुन्दर रूप में हुआ है–

"अब मैं तो नहीं रहा हूँ प्रकाश का कवि,
और न ही हूँ अन्धकार का कवि,
अब तो हूँ मैं, वर्षा–होते–में चमक उठती
सजल–चम्पई धूप का कवि!
अब मैं नहीं रहा हूँ मुस्कान का कवि
और न ही हूँ मैं अश्रु–उच्छ्वास का कवि,
अब तो हूँ मैं साश्रु–मुस्कान का कवि,

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'चिडियाँ', पृष्ठ 209
2 वही, 'जिज्ञासा', पृष्ठ 268

अब मैं नहीं रहा हूँ प्रभात का कवि,
और न ही हूँ मैं वसन्ती रात का कवि;
अब तो हूँ मैं—
तहों—जमें सिलहटी बादलों से छनते—
शिशिर के अवसाद—करुण सूर्यास्त का कवि!" [1]

कवि अन्धकार या प्रकाश का कवि नहीं है अपितु वह वर्षा मे चमक उठती सजल चम्पई धूप का कवि भी है। इसी प्रकार वह प्रभात और वसन्ती रात का कवि नही अपितु तहों जमे सिलहटी बादलों से छनते शिशिर के अवसाद—करुण सूर्यास्त का कवि भी है। पहले कवि प्रकृति को अपने जीवन और कविता में देखता था, अब वह अपने जीवन और कविता को प्रकृति में देखता है।

'शोक—समाचार' नामक कविता मे कवि इस सत्य को उद्घाटित करता है कि अब वह सुगन्धित मन्द बयार से तरगित—रोमांचित ही नहीं होता, अपितु कडी धूप की लू भी उसे प्रत्यक्ष दिखाई देती है जो उसके गीतों को भी लग गई है और वे झुलसने से बचाए नही जा सके—

"बिजलियों की शिरोरेखाएँ खींच—खींच कर—
नक्षत्रों के अधरों में, मेरी उर्मिल साँसों ने
जो गीत लिखे थे—
वे अब नहीं रहे।
वहीं—उसी बहुत पुरानी
पगडण्डी के मोड़ पर से वे गुजर रहे थे,
धूप बड़ी कड़ी थी,
लू लग गई—
बचाए न जा सके।" [2]

'मै गा न सकूँगा' शीर्षक कविता में बिजली की कौंध—कडक और चिडिया की भीत—स्तब्ध ऑख के द्वारा वह समाज के आतंकपूर्ण वातावरण की अवधारणा करता है। शिशिर—सॉझ के मेघाडम्बरों से आच्छादित गगन तथा उसके व्यथा से भारी मन में कवि को एक विचित्र समानता का अनुभव होता है। मानव आज की अस्तित्वहीनता के कारण भीतर से कितना भयभीत हैं। इस यथार्थ को उजागर करने के लिए कवि काली—पीली ऑधियों मे किसी चिडिया की काठ—मारी, स्तब्ध—भीत नन्ही गोल ऑख का उपमान के रूप में प्रयोग करता है—

"बिजली का कौंध—कड़क से आहत—चमत्कृत
चिड़िया की नन्हीं आँख—सा
मैं भीत—स्तब्ध रह गया हूँ!
मैंने जाने क्या देख लिया है!
कोई प्रचण्ड हिम—लहर सी निकल गई है मुझ पर से—
मैं काठ—मारा—सा रह गया हूँ!
अब मैं दीप्त—तरल स्वर में गा न सकूँगा!" [3]

1 'ऑधी ओर चॉदनी' 'घोषणा', पृष्ठ 1
2 वही, 'शोक—समाचार', पृष्ठ 2
3 वही, 'मैं गा न सकूगा', पृष्ठ 3

अँधेरे से ही प्रकाश का जन्म हुआ है और सृष्टि के प्रारम्भ मे अँधेरा ही अँधेरा था। फिर अँधेरा प्रकृति का एक बड़ा सत्य है। इस अँधेरे के कारण ही प्रकाश का मूल्य इतना अधिक है। अँधेरे के कारण हम आह्लादित होकर ब्रह्म का आलोकमय मधुमास का स्वर्णिम सवेरा' विस्मय, हर्ष और रोमांच से देखते हैं। अँधेरे को विश्रामदायक बताया गया है–

"यह अँधेरा है बड़ा विश्रामदायक,
ग्रीष्म की विश्रान्त संध्या में भरे जल–हौज सा–
जिसमें कि मेरी दृष्टियों की चपल चारु किशोरियाँ
निर्बन्ध होकर कूदती हैं, तैरती हैं, और नीर उछालती हैं!
जल–सतह सा यह अँधेरा है बड़ा समतल;
इस अँधेरे में न होता भेद और प्रभेद!" [1]

कवि ने राजनीति पर करारा व्यग्य करते हुए 'दलबदलू' शीर्षक कविता मे प्राकृतिक उपमानों का सहारा लेकर भावों को अत्यन्त प्रांजलता के साथ अभिव्यक्त किया है–

"ताड़, खजूर, पौधे, तृण–
चले जा रहे हैं धरती से आकाश की ओर;
किरणे, वर्षा की बूँदें–
चली आ रही हैं आकाश से धरती की ओर;
सृष्टि में कब न रहे–
दलबदलू!" [2]

इसी प्रकार कवि ने 'डेमोक्रेसी' शीर्षक कविता में भी प्रकृति की सहायता से ही प्रजातान्त्रिक शासन–व्यवस्था की विडम्बना को वाणी दी है।

'पहले इनकी सुन लो' कविता मे प्रकृति का प्रत्यक्ष–एवं स्पष्ट चित्रण किया गया है, किन्तु यहाँ कवि की संवेदना अधिक प्रभावी रही है। 'ओ निगोडे चॉद' मे कवि का रोमांटिक मूड भी देखने को मिलता है। 'वसन्ती धूप' मे कवि ने धूप का मानवीकरण इस प्रकार किया है कि देखते ही बनता है–

"कॉंचनारी पहन साड़ी, पान खाये हैं,
नाक में हैं लौंग– जिससे किरण फूटे!
लान में बैठी अकेली
गुनगुनाती, नील स्वेटर बुन रही है,
औ 'बिनाका गीतमाला' सुन रही है,
मृदुल पलकों में क्षितिज के पार के सपने सँजो
कुछ गुन रही है" [3]

वसन्त को लेकर अन्य कई कविताएँ 'तरुण' ने लिखी हैं जैसे 'वसन्त', 'वसन्त–प्रभात', ' आओ हे जीवन के वसन्त', तथा 'वसत' जिनमे प्रकृति के उल्लास, रोमांच, प्रफुल्लता, मादकता, सरसता आदि को लेकर उद्दीपन रूप में प्रकृति का चित्रण किया गया है। इस दृष्टि से कवि की 'फूल खिले बेला के', 'हम तुम, कही चल दें', 'सुकुमारि, उठाओ अवगुण्ठन', 'दुहरा दो वह फिर एक रात' आदि

1 'ऑधी और चॉदनी' 'अँधेरा', पृष्ठ 4–5
2 वही, 'दलबदलू', पृष्ठ 19
3 वही, 'वसन्ती धूप', पृष्ठ 41

कविताएँ विशेष उल्लेखनीय हैं।

'कश्मीर की घाटी में' एक क्षण वह देखता है कि यहाँ के टल्मल् झरने को दग्ध–जग से कोई प्रयोजन नही किन्तु दूसरे ही क्षण यहाँ के मानवों की दीनावस्था से उसका हृदय द्रवित हो उठता है कि यह भू–स्वर्ग विरोधाभासी है। प्राकृतिक दृष्टि से हरी–भरी सुन्दर और रमणीय कश्मीर–घाटी में बाल, युवा, वृद्ध, स्त्री–पुरुष – सभी अभावों और निर्धनता की भयंकर जकडन में जकडे जुए है–

"चिर अभाव–मारे, श्रम–हारे,
तरुण, वृद्ध, बालक बेचारे!
हैं तुषार–हत कमलिनियों–सी
कामिनियाँ लगती खाये श्री!
दुरवस्थित, जर्जर, औ निर्धन–
गली, चौक, छाजन, घर, आँगन!" [1]

'प्रथम किरण', 'हिमाचला' और 'आँधी और चाँदनी' नामक काव्य कृतियो मे शायद ही कोई ऐसी कविता हो जिसमें प्रकृति के उपमानो का प्रयोग न किया हो अर्थात् पूरे के पूरे काव्य सग्रह प्रकृति के कितने निकट हैं यह देखकर विस्मय होता है।

सन् 1984 मे प्रकाशित 'हम शिल्पी संत्रास के' शीर्षक कविता–सग्रह की अनेक कविताओ में मानव–जीवन की अद्यतन विसंगतियो से कवि के सरोकार कुछ अधिक सघन रूप मे जुडने के कारण यान्त्रिक जीवन की विडम्बनाओ से द्रवित–त्रसित होकर, उसको पतन से बचाने की तडप और उत्पीडन मे और टूटते जीवन–मूल्यों, लडखडाती जीवन–आस्था को बचाये रखने के मानसिक सघर्ष मे कवि का स्वर किंचित तीखा और आक्रोशमय हो गया है जिसके फलस्वरूप प्रत्यक्षतः कवि का प्रकृति–प्रेम भले ही परिलक्षित न हो किन्तु परोक्षतः कवि 'तरुण' की ये कविताएँ प्रकृति से दूर और असम्पृक्त नहीं है। सत्य तो यह है कि प्रकृति के माध्यम से ही कवि अत्यन्त करारे और तिलमिला देने वाले व्यग्य किए है। कवि की 'अभियोग–पत्र' इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है–

"यह नहीं है आकाश–
जिसमें जड़ा हो चाँद,
जिसमें जड़ा हो सूरज,
जिसमें जड़े हो नक्षत्र!
यह तो है–
x x x x x x
आततायी सत्ता के नाम
तुरन्त जवाबदेही के लिए
डंकों से लिखा
खुला, हस्ताक्षरित
अभियोग–पत्र!" [2]

कवि ने 'राशनकार्ड के साथ वापस' शीर्षक कविता में सूरज के माध्यम से देश की खाद्य–सामग्री–वितरण–प्रणाली की पोल को भली–भाँति विवृत किया है–

1 'आँधी और चाँदनी' 'कश्मीर की घाटी मे', पृष्ठ 129
2 'हम शिल्पी सत्रास के' 'अभियोग पत्र', पृष्ठ 35

"सर्दाये नवम्बर की संझा का
ढीला—पीला
करुण—करुण
अनमना सूरज
उदास कुंजों में ढला जा रहा है—" [1]

'चोचो का खेल' शीर्षक कविता मे भी प्राकृतिक उपमानों के द्वारा राजनीतिज्ञों, सत्तासीन पदाधिकारियों को जनता का रक्त चूसने की प्रक्रिया की ओर सकेत दिया गया है—

"तामचीनी की एक बड़ी तश्तरी रखी है
खुले आकाश के नीचे
बड़ी गोल मेज पर!
उसके तीन ओर तीन ऊँचे स्टूल हैं।
जिन पर खड़ी हैं—
लम्बी—लम्बी, सख्त, पिन—जैसी तीखी चोंच वाली
दूध जैसी सारसें।" [2]

'सूरज—था कभी' शीर्षक कविता में सूरज और चाँद के द्वारा कवि ने राजनैतिक व्यवस्था और नैतिक मूल्यों के पतन का पर्दाफाश किया है, जो देखते ही बनता है। 'यस सर' नामक कविता में आकाश और सागर के माध्यम से शासन तन्त्र की कार्य—प्रणाली पर एक अत्यन्त तीखा व्यंग्य किया गया है—

"ज्ञान के चमकते मोतियों;
घोंघे—सीपियों का यह तरंगाकुल समन्दर
गहरे आन्तरिक उल्लास में भरकर,
अपने बाँस—
खोखले, जडाऊ असमान के चरणों में
लहरता— पसरता—हहरता,
धीर—गम्भीर संयत स्वर में
अदब के साथ
मुण्डी हिला—हिला कर
कह रहा है
यस, सर! यस, सर......" [3]

इसी संग्रह मे सन् 1955 मे लिखी कविता— 'मै बनवासी होता'— मे कवि का प्रकृति प्रेम और प्राकृतिक जीवन के प्रति उसकी यही आस्था और आकर्षण तो प्रत्यक्ष रूप में व्यंजित हुआ है—

"स्वस्थ धमनियों में, वसन्त के स्वर्ण भोर—सा राता
बरसाती झरने—सा मेरा लाल रक्त लहराता!
वज्रसार फौलादी चौड़ी छाती लिए अकेला—

1 'हम शिल्पी सन्त्रास के' 'राशन कार्ड के साथ वापस', पृष्ठ 36
2 वही, 'चोचों का खेल', पृष्ठ 40
3 वही, 'यस सर', पृष्ठ 20

माँसपेशियों को चमकाता चलता मैं अलबेला,
तूफ़ानी नदियों को करता पार—लगाकर गोता!
मैं बनवासी होता!" [1]

'चॉद और चॉदनी' शीर्षक कविता में आकाश, तारे, चॉद और चॉदनी की धवलिमा के द्वारा देश की संसद और उसकी कार्य–प्रणाली पर अत्यन्त तीखा व्यंग्य किया गया हैं आकाश को भव्य असेम्बली चेम्बर, तारों को चमचमाती कारों मे सज–धज कर पधारे चुनीदा सांसद, चॉदनी की धवलिमा को लॅंगोटिये गॉधी की रस्मिया याद तथा चॉद को खींच कर मारा गया संवैधानिक, अहिंसक पेपर वेट कहकर कवि ने देश के संसदीय तामझाम की और उसके क्रिया–कलापों की पोल–पट्टी खोल दी है–

"आकाश–
भव्य असेम्बली चैम्बर
तारे–
चमचमाती कारों में पधारे
सजे–धजे चुनिंदा मेम्बर,
चाँदनी की धवलिमा–
स्वाधीनता के बाद
देश की स्मृति में बसी
लँगोटिये गाँधी की दो–अक्टूबरी रस्मिया अमीरी याद!
सज्जा, प्रसाधन, डिकोरम– सब अप–टू–डेट!
चाँद–
है? किसने खींच कर मारा–
संवैधानिक अहिंसक पेपरवेट!
— की बोले माँ तुमि अबले!" [2]

निहित स्वार्थों पर आधारित आज की राजनीति का विस्थापन और उसके प्रतिक्षण टूटते–बदलते मानदण्ड और राजनीतिज्ञों के अद्य.पतन को काव्याभिव्यक्ति देने के लिए कवि ने एक प्राकृतिक प्रतीक लिया है। सॉभर झील, जो कि अत्यन्त सशक्त और मौलिक है। सांभर झील में पेड़–पत्ता, फल–फूल, कागज – सब कुछ नमक में रूपान्तरित हो जाता है। इसी प्रकार राजनीति में भी योग्यता, कला, साधना, जीवन–मूल्य, प्रीति, मुस्कान, आकांक्षा आदि– सब कुछ गलकर केवल राजनीति ही रह जाता है–

"सांभर झील से भी लम्बी–चौड़ी एक झील और भी बड़ी–
जिसमें सब समान हैं : फूल हो या काँटा, पर्वत हो या कंकडी,
आकांक्षा, सम्बन्ध, मुसकान, प्रतीति
कला, सौन्दर्य, साधना, जीवन–मूल्य, प्रीति–
कुछ भी डालो, सब कुछ गलसड़कर हो जाता है–
राजनीति, राजनीति, राजनीति।" [3]

डॉ0 उदयशकर भट्ट के 'तरुण' द्वारा रचित प्रकृति सम्बन्धी काव्य के सम्बन्ध में विचार ध्यातव्य है– ***"वे मूलतः***

---

1 'हम शिल्पी सत्रास के' 'मै बनवासी होता', पृष्ठ 70
2 'खूनी पुल पर से गुजरते हुए' 'चॉद और चॉदनी', पृष्ठ 48
3 वही, 'राजनीति की सॉभर झील', पृष्ठ 72

प्रकृति के ही कवि हैं। .... प्रकृति ने आपको जो हृदय दिया है, वह केवल कवि का। यदि आप उसे ठीक दिशा में चलाए रह सके तो भविष्य आपका है।" [37]

'अंचल' का कथन है, *"आपने बड़ा ही सरस और अनुभूतिप्रवण कोमल मोम की तरह प्रभावशाली* (impressionable) *कवि हृदय पाया है। पहाड़ी झील के सुनील प्रशान्त तल की तरह, जिस पर छोटे से छोटे कम्पन का, व्यापार का प्रतिबिम्ब पड़े बिना नहीं रहता। हिलते वृक्ष का छोटे से छोटा पत्ता भी उसमें प्रतिबिम्बित हो उठता है। ऐसे प्रीति–सुकोमल कवि–हृदय से निकली मर्म–मधुर कविताएँ पाठक को भला क्यों न अभिभूत करें। आपकी अनुभूति और कल्पना दोनों ऐसी आत्मीयता से गुँथी बढ़ी हैं कि देखते ही बनता है। आपका कवित्व और भी रसोज्ज्वल हो उठा है।"* [38]

विदर्भ महाविद्यालय अमरावती की कवि सम्मेलन स्मारिका 1959 से लिया गया अंश उद्धृत है– *"प्रकृति का चतुर चितेरा, कला के 'तरुण' वैभव की लाली से मस्त यह कवि, हिन्दी काव्य–संसार का अभिनव पन्त है। ऊषा का मदिरोल्लास, रवि–रश्मियों का विकास, सांध्य किरणों की गुलाबी गंध, ज्योत्स्ना का रास, तारकों के भावभीने गान, फूलों की मुस्कान, पंछियों का कलरव, अलियों का गुंजन, प्रकृति का स्पन्दन, पुलक और कम्प जैसे कवि के प्राणों में भावों का भण्डार बनकर छल–छल करता विकल है।"* [39]

डॉ0 हरिश्चन्द्र वर्मा के अनुसार, *"प्रकृति के प्रति ऐसा प्रगाढ़, रागात्मक, दार्शनिक और आध्यात्मिक सम्बन्ध कविवर 'तरुण' की विरल उपलब्धि है। प्रकृति और अन्तः प्रकृति का ऐसा सघन अन्तर्गुम्फन अन्यत्र दुर्लभ है।*

कवि ने प्रकृति के मुक्त क्षेत्र की उन्मुक्तता में आत्मसाक्षात्कार का मार्ग खोज लिया है।" [40]

इस प्रकार कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि प्रारम्भ में कवि अपनी आयुचरण और अपने संस्कार के कारण प्रकृति के उल्लास और आनन्द मे भाव–विभोर हो उठता था किन्तु धीरे–धीरे अपनी काव्यात्मक चेतना के विकास के अन्तराल में वह समाज तथा मानव–जीवन के गहरे सरोकारों के साथ सघन से सघनतर रूप में सम्पृक्त होता गया। कवि 'तरुण' के काव्य मे प्राकृतिक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति अत्यन्त विशाल और विशद फलक पर हुई है। प्रकृति के विविध स्वरूपों तथा मनोदशाओं को कवि ने विस्मय–विमुग्ध होकर देखा है, टकटकी लगाकर अत्यन्त रागात्मकता के साथ उसका सूक्ष्म निरीक्षण किया है। इसी कारण वह प्रकृति के कोमल–कठोर, सुन्दर–कुरूप, शान्त, मधुर, सौम्य, उदात्त और भीषण आदि– सभी स्वरूपो का अत्यन्त सहजता के साथ सौन्दर्यपूर्ण चित्रण कर सका है। प्रकृति के अनन्त उल्लास के अतिरेक के क्षणो मे भी कवि ने जीवन की अनिवार्यताओ और उसके यथार्थ–बोध को विस्मृत नही किया है। अपितु प्रकृति को मानव–जीवन से तथा मानव–जीवन को प्रकृति से सम्पृक्त करके ही कवि ने देखा और अनुभूत किया और अपनी इन्ही जीवन्त सवेदनाओ को निश्छलता के साथ सरल और सहज अभिव्यक्ति दी है। प्रकृति की सारी रसमयता, तरलता, माधुर्य, रोमाच, स्फूर्ति, उन्मुक्तता, उदात्तता, उज्ज्वलता आदि लेकर, मानव–जीवन मे इनको घोल डालने के दृढ आत्म–विश्वास, अन्तःस्फूर्ति और मूल जीवन–तरग के साथ 'तरुण' ने जीवन के यथार्थ की गहरी जडो मे उतर कर अपनी काव्याभिव्यक्ति को जीवन की मूल ऊर्जा से तथा उसके सरोकारो से सम्पृक्त किया है। 'तरुण' की यह हिन्दी काव्य–धारा को स्थायी और मौलिक देन है। आलम्बन, उद्दीपन आदि शास्त्रीय प्रतिमानों के रूप मे प्रकृति के विशद चित्रण के साथ अभिव्यक्ति के माध्यम– बिम्बो, प्रतीको और उपमानों आदि के रूप मे भी कवि ने प्रकृति का भरपूर उपयोग किया है।

इस पूरी विकास प्रक्रिया में कवि की सवेदना तथा अभिव्यक्ति की शैली मे भले ही परिवर्तन अथवा विकासात्मक क्रम

देखा जा सकता है किन्तु इतना निश्चित है कि कवि का प्रकृति के प्रति आकर्षण और प्रेम निरन्तर बना रहा है। लगता है, प्रकृति के बिना कुछ कहना उसे श्रेयस्कर ही नही जचॅता। चेतन और अचेतन रूप में कवि का प्रकृति–प्रेम उसकी रचना–धर्मिता को प्रभावित करता ही रहा है।

कवि प्रकृति के प्रांगण में आत्मसात होकर ही उससे एकात्मभावी तादात्म्य स्थापित करता है। कवि प्रकृति की मनोहारी छटाओ में उसके वैविध्यपूर्ण लालित्य् में जब रस प्लावित होता है तो गीतों में उसकी सुगन्ध दूर–दूर तक अनुभासित होने लगती है। इस तरह 'तरुण' का गीतकार प्रकृति के मनोहारी दृश्यों में सराबोर ही दृष्टिगोचर होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 तारे, ओसकण और चिगारियॉ, पृष्ठ 25
2 वहीं, पृष्ठ 27
3 वहीं, पृष्ठ 27
4 वहीं, पृष्ठ 30
5 शिखर सगीत पृष्ठ 15
6 वही, पृष्ठ 46
7 आ0 रामचन्द्र शुक्ल · 'चितामणि भाग–1', पृष्ठ 246
8 तारे, ओसकण और चिगारियॉ, पृष्ठ 33
9 वही, पृष्ठ 45
10 वही पृष्ठ 44
11 अखण्ड काव्य यात्रा, पृष्ठ 3 .
12 वही, पृष्ठ 5
13 वही, पृष्ठ 7
14 वही पृष्ठ 7
15 वही पृष्ठ 10
16 वही, पृष्ठ 11
17 वही, पृष्ठ 10
18 तारे, ओसकण और चिगारियॉ, पृष्ठ 25
19 वही, पृष्ठ 29
20 वही, पृष्ठ 30
21 वही, पृष्ठ 29
22 डॉ0 विष्णु विराट 'गीतात्मा कवि तरुण दृष्टि और सृष्टि'
23 'तरुण काव्य–ग्रन्थावली' 'नया जीवन नया समाज', पृष्ठ 164
24 'तरुण काव्य–ग्रन्थावली' 'उसकी जय हो', पृष्ठ 59
25 वही, 'दान', पृष्ठ 60
26 वही, 'उपचार', पृष्ठ 60
27 वही, 'सघर्ष कर', पृष्ठ 73
28 वही, 'मेरी गति', पृष्ठ 90
29 वही, 'हृदय का मूल्य', पृष्ठ 91
30 वही, 'अमर विश्वास', पृष्ठ 163
31 गीतात्मा कवि तरुण–डॉ0 सुन्दरलाल कथूरिया, पृष्ठ 146
32 वही, डॉ0 सुधेश,, पृष्ठ 105
33 डॉ0 हरिश्चन्द्र वर्मा 'कवि 'तरुण' का काव्य ससार', पृष्ठ 72
34 डॉ0 शान्तिस्वरूप गुप्त · 'दृष्टि और सृष्टि', पृष्ठ 95
35 (स0) डॉ0 ओमानन्द रू0 सारस्वत · 'कविवर 'तरुण' सर्जन के चरण' पृष्ठ 155
36 (स0) डॉ0 ओमानन्द रू0 सारस्वत 'कविवर 'तरुण' सर्जन के चरण' पृष्ठ 120
37 डॉ0 उदयशकर भट्ट का मत 'अखण्ड काव्य यात्रा' के पृष्ठ 21 से
38 'अचल' का मत . 'अखण्ड काव्य यात्रा' के पृष्ठ 21 से
39 (स0) डॉ0 ओमानन्द रू0 सारस्वत 'कविवर 'तरुण' सर्जन के चरण' पृष्ठ 144
40 डॉ0 हरिश्चन्द्र वर्मा का मत 'अखण्ड काव्य यात्रा' के पृष्ठ 23 से